अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४६ अंक : ०३-४ फाल्गुन-चैत्र-वैशाख वि.सं.-२०७६ मार्च-अप्रेल, २०२०(संयुक्तांक) पृष्ठ ३२ एक प्रति तीस रुपए RNI 43602/77 ISSN No.2581-981X



गर्ल्स नॉट ब्राइड्स
राजस्थान गठबंधन की बैठक

सत्रह-अठारह फरवरी। **गर्ल्स नॉट ब्राइड्स** की प्रमुख **डॉ. फैथ म्वांगी पोवेल** और उनकी सहयोगी **हीथर हैमिल्टन** १७ फरवरी को जयपुर पहुंचीं। मौका था **गर्ल्स नॉट ब्राइड्स** राजस्थान गठबंधन की बैठक का, जिसमे वे मुख्य अतिथि के रूप में शामिल हुईं।

गर्ल्स नॉट ब्राइड्स राजस्थान गठबंधन की इस बैठक में राज्य भर से १४ संस्थाओं की ३० किशोरियों व संस्था प्रतिनिधियों ने भाग लिया। राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा समिति के कांफ्रेंस हॉल में किशोरियों ने एक गीत **बेटी हूं मैं बेटी, मैं तारा बनूंगी** गा कर मेहमानों का स्वागत किया। गठबंधन के अध्यक्ष **अरविन्द ओझा** ने सूत की माला पहना कर **डॉ. फैथ म्वांगी पोवेल, हीथर हैमिल्टन, शिप्रा झा** एवं **दिव्या मुकुंद** का स्वागत किया ।

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों से आई किशोरियों ने अपनी बात रखी जिसमें उन्होंने अपने **संघर्ष** और **सफलता** की कहानी को सुनाया। सिरोही से आई **सविता** ने बताया कि उसका बाल विवाह बहुत छोटी उम्र में ही कर दिया गया। वो पढ़ना चाहती थी लेकिन उसके दादा इसका विरोध करते थे। **सारद संस्था** से जुड़ने के बाद उसके जीवन में बदलाव आया और आज वो कानून की पढ़ाई कर रही है।

गरिमा पुरुस्कार प्राप्त करने वाली **राजसमन्द की यशोदा** ने भी अपनी कहानी सुनाई। **यशोदा** ने बताया कि उसका भी बाल विवाह हो गया था लेकिन उसने इसका विरोध किया और अपने विवाह को निरस्त करवाया। **यशोदा** एक दिन के लिये बाल विकास मंत्रालय में मंत्री बनी और बाल विवाह को रुकवाने के लिये कदम उठाये। **टोंक से आई कोमल** ने अपनी बात में बताया कि उसके गांव के कुछ लड़के लड़कियों को परेशान किया करते थे। शुरुआत में उसने इसका विरोध किया, लेकिन बाद में उसे महसूस हुआ कि लड़कों से बात करके ही इस मुद्दे को सुलझाया जा सकता है। **कोमल** ने अपनी संस्था **शिव शिक्षण समिति** के साथ लड़कों से बातचीत की और उन्हें समझाया जिसके बाद छेड़छाड़ की घटना बंद हो गयी।



लूनकरणसर से आई हुल्लाश ने अपने गांव में पांचवीं तक पढ़ाई की जिसके लिये उसे पांच किलोमीटर पैदल जाना होता था। शीघ्र ही वो बाल मंच की सदस्य बन गयी और अपने अधिकारों को समझने लगी। **हुल्लाश** ने बताया कि वो एक दिन के लिये फ़िनलैंड की राजदूत भी बनायी गयी। **अजमेर** से आई **कल्पना** ने कहा कि उसका बाल विवाह हो गया था जिसका वो विरोध करती रही।

डॉ. हैदर ने लड़कियों की कहानियां उनकी जुबानी सुनकर कहा '**आज यह मेरी बेहतरीन सुबह है।**' यहां सबके साथ गुजारा वक्त हमेशा याद रहेगा। आप सब में अद्भुत क्षमता है।

डॉ. फेथ ने कहा कि सबकी कहानियां सुनकर मैं अपने आपको सम्मानित महसूस कर रही हूं। उन्होंने भी अपने संघर्ष की कहानी को साझा किया। उनका कहना था कि पूरी दुनिया में लड़ाइयां हैं, और चुनौतियां भी। हम विश्व स्तर पर संगठित होकर ही बदलाव ला पायेंगे।

दूसरे दिन **गर्ल्स नॉट ब्राइड की साधारण सभा की बैठक** संपन्न हुई। इसमें वर्षभर के संपन्न कार्यों का प्रतिवेदन **डॉ. निशांत ओझा** ने प्रस्तुत किया। बैठक में गंठबंधन के अध्यक्ष **अरविन्द ओझा** ने बजट पर चर्चा करते हुए वित्तीय स्थिति सभी सदस्यों के समक्ष रखी। **डॉ. शारदा जैन** ने अपनी बात रखते हुए कहा कि हम सभी अपने कार्यों का विश्लेषण करें और गलतियों से सीखें।

इस बैठक में **यूएनडीपी के सुनील जैकब, यूनिसेफ की मुख्य कार्यकारी अधिकारी इसावेल, क्राई संस्था के धर्मवीर, पापुलेशन फाउंडेशन ऑफ इंडिया** के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया।

डॉ. फैथ ने सभी को धन्यवाद दिया और एक बेहतर भविष्य की कामना की। ❑

निशांत अरुण ओझा, जयपुर

❑ सांईदीन दरवेश

कोई दीन कूं मुसला कैत है,
कोई दीन कूं कहै हिंदू हजारी।
कोई दीन कूं कैत है कबीर के जोड़ का,
कोई दीन कूं कहै दरसणा धारी।
कोई दीन कूं कहै भजन प्रवीन में,
कोई दीन कहै जोगी जिहारी।
ना दीन तो कीध भजन भू पर है,
ना ऊंच ना नीच, हलको न भारी।।

हिंदू कहै सो हम बड़े,
मुसलमान कहै हम्म।
इक मूंग की दो फाड़ है,
कुण जादा कुण कम्म?

–प्रस्तुति : गिरधरदान रतनू, दासोड़ी

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ४६ अंक : ३-४ • फाल्गुन-चैत्र-वैशाख वि.सं.२०७६ • मार्च-अप्रेल, २०२० (संयुक्तांक)

क्र म

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक : रमेश थानवी | कार्यकारी संपादक : प्रेम गुप्ता | प्रबंध संपादक : दिलीप शर्मा

एक प्रति तीस रुपये | वार्षिक शुल्क तीन सौ पचास रुपये | संस्थागत वार्षिक शुल्क पांच सौ रुपये | मैत्री समुदाय तीन हजार रुपये



आवरण - ऋषभ सुराणा, जोधपुर

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४
फोन : २७००५५९, २७०६७०९, २७०७६७७
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

शिक्षा के रंग : वसंत के संग

मित्रो

यह महीना वसंत के आगमन का है और होली का भी। होली यानी रंगों का **उत्सव**। होली के रंगों की बात करते ही याद आ जाते हैं गुलाल का लाल, हरा और गुलाबी रंग। ये रंग फूलों के भी हैं। याद क्यों न आएं हमारे चारों ओर वसन्त की बहार जो आ गयी है। अनेक रंगों के फूलों से बगिया लहरा गयी है। ऐसे में हमारे दिल दिमाग को भी खिल-खिल जाना चाहिए था। मन में शांति होनी चाहिए थी और हृदय भी आनन्द से भर जाना चाहिए था।

मित्रो, जब बात रंगों की चल पड़ी है तो ये रंग हमें दिखने चाहिए थे हमारे घरों में, हमारी शालाओं में, हमारे अध्यापकों में और बालकों के मन में। ये रंग-बिरंगे रंग जीवन को आनन्द और उल्लास से भर देते हैं। जीवन के रंग भी तो स्नेह, प्रेम और भाईचारे के रंग से भरे होने चाहिए थे।

ताजा घटनाएं देखें तो दिल दहल जाता है। **भाईचारा** नदारद हो गया है। समूचा समाज बदरंग हो गया है। यह शिक्षा की असफलता है। शिक्षा फेल हो गयी है। अब कैसे कहें कि हम शिक्षित हैं। रंग-बिरंगे हैं।

शिक्षा के रंगों पर आज कई सवाल मन में उठ रहे हैं। आज शालाओं में कोई रंग नहीं है। बालकों के मन में भी कोई रंग नहीं है। रंग भी कहीं दीखते नहीं और रस भी गायब हैं। एक नितांत नीरस एवं उदास समाज में उलझ गये हैं हम।

जहां शिक्षा का काम भाईचारे से रहना सिखाना है? न कि नफरत और हिंसा से। शिक्षा का उद्देश्य भी तो सीखने-सिखाने के आनंद में है। देखने की बात यह है कि क्या हमारी शिक्षा हमारे जीवन के रंगों के साथ-साथ चल रही है। यह शिक्षा कौन कौन से रंग भर रही है हमारे दिल और दिमाग में। क्या आज शिक्षा इन रंगों को भरने में समर्थ हो पाई है? कहीं ऐसे हालात पैदा करने में हमारी शिक्षा तो जिम्मेदार नहीं है?

ऐसे में विचार करने की बात है कि ऐसा क्यों हो रहा है? मन में यह सवाल भी उठ रहा है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था तो बदरंगी नहीं हो गयी है?

कहीं ऐसा तो नहीं है कि प्रतिस्पर्धा और अंकों की होड़ में बालकों के मन में घृणा, ईर्ष्या और नफरत के रंग भर गये हों?

ऐसा एक बड़ा उदाहरण हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय के शोध छात्र **वेमुला** जो कि दलित थे, की आत्महत्या का है। **वेमुला** उन सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के लिए चिंतित थे जिनसे इंसानियत मर जाती है। परिणाम हमारे सामने है। हिंसा अपने अनेक स्वरूपों में आग की लपटों के साथ हमारे मनों को, दिल और दिमाग को कचोट रही है।

दूसरी घटना है **विल्लुपुरम तमिलनाडू** चिकित्सा विज्ञान की तीन छात्राओं के एक साथ कुएं मे कूदकर आत्महत्या की। तीसरी घटना है २६ जनवरी को **तेलंगाना के नलगौंडा** जिले के एक गांव में कृषि मजदूर परिवार की १७ वर्षीय किशोरी के आत्महत्या की है। ऐसी अनेक घटनाएं हैं जो कि लोगों के सामने भी नहीं आ पाती हैं। ऐसा पहली बार नहीं हुआ। इससे पहले भी ऐसी घटनाएं देश में बार-बार होती रही हैं। कहीं जातिवादं तो कहीं साम्प्रदायिकता का बदरंगी रंग हमारे सामने है।

महिलाओं का अपना **अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस** भी इस माह में है। देश में महिलाओं की हालत चिन्ताजनक है। चिन्ता हमें हमारी बेटियों की सुरक्षा और उनके आदर-सम्मान की है। देश में अभियान और कानून की तो कोई कमी नहीं, लेकिन सवाल आम आदमी की जागरूकता का है, उसकी संवेदना का है। आखिर कब तक हम इस भय और हिंसा के माहौल में रहने को विवश होते रहेंगे। आखिर कब समझ पायेंगे कि दुनिया नफरत से नहीं प्यार से चलती है। न्यूजीलैंड की प्रधानमंत्री जेसिंडा अर्डर्न का भी तो यही मानना है।

हम **झूठी धर्मान्धता** और **राष्ट्रीयता** के नाम पर कब तक लड़ते रहेंगे? क्या हम विनोबा भावे की तरह जय हिन्द बोलने की बजाय **जय जगत** नहीं बोल सकते। विनोबा ने कर्नाटक की एक सभा में कहा था कि हम यदि राष्ट्र-राष्ट्र की जय करते रहे तो दुनिया में लड़ाइयां चलती रहेंगी।



आइये, हम मिलकर वसंत की सुगंधित सुवास की महक से सुवासित हो जायें। यह तभी संभव होगा जब देश में अमन और अहिंसा के रंग हमारी शिक्षा व्यवस्था में घुल जायेंगे। हमारी बेटियां अपने सपनों को साकार कर सकेंगी और वे नयी ऊंचाइयों को छू पायेंगी। ❑ – प्रेम गुप्ता

आ ले ख



प्राणनाथ पंकज

शिक्षा की निरन्तरता और आश्रम व्यवस्था

दूसरी किश्त

शिक्षाविद् प्राणनाथ पंकज के आलेख का दूसरा भाग सतत शिक्षा की वकालत करता है। उनका मानना है कि शिक्षा का उद्देश्य बहुत विषयों की सारी पुस्तकों को पढ़ना मात्र नहीं है। विद्या का लक्ष्य है मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक रूप में अनुभव प्राप्त करना। शिक्षा एक दीर्घकालीन और जीवनपर्यन्त निरंतर चलते रहने की प्रक्रिया है। आज के विश्व व्यापी समाज में अशांति और हिंसा के लिए वर्तमान शिक्षा व्यवस्था उत्तरदायी है। प्रस्तुत आलेख इन सबसे मुक्ति के लिए प्राचीन 'सत्साहित्य' के अध्ययन की मांग करता है। सं. ❑

शिक्षा-मनीषियों के उपरोक्त वक्तव्यों में जहां एक ओर निराशा की ध्वनि है, वहीं दिशा-निर्देशन भी है। इनमें आशा के जो स्वर हमें सुनाई देते हैं उनमें विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के साथ हमारे प्राचीन साहित्य और सनातन, उदात्त सांस्कृतिक मूल्यों की शिक्षा का आग्रह भी है। इसी के साथ यह सुझाव भी है कि हम व्यक्तिगत पाशविक मौज-मस्ती और क्षणिक स्वेच्छाचार के स्थान पर स्थायी स्वाधीनता का वरण करें।

संस्कृत के महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश में सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का वर्णन करते हुए कहा है-

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।[10]

अर्थसंचय त्याग के लिए, मितभाषण सत्यनिष्ठ बने रहने के लिए, विजय-कामना यश के लिए और गृहस्थ संतान-परंपरा को अक्षुण्ण रखने के लिए।

बाल्यकाल में शिक्षा प्राप्ति का अभ्यास, यौवन में (अर्थ-काम द्वारा) विषयों का सेवन, वृद्धावस्था में मुनियों का जीवन और अंत में योग-भगवद्भजन अथवा आत्मचिंतन करते हुए देह-त्याग।

कालिदास बताते हैं कि रघुवंश कुमारों की यही जीवन-पद्धति थी। इन दो श्लोकों में कवि ने सूत्र रूप में हमारे सांस्कृतिक मूल्यों और आदर्शों को समेटा है। उनका साररूप में विस्तार करते हुए हम कह सकते हैं-

प्रथम श्लोक

धन का संचय लोभ से नहीं, उसे समेट कर अपने क्षुद्र स्वार्थों की सिद्धि के लिए नहीं, त्याग के भाव से किया जाना चाहिए। ईशावास्य उपनिषद् के प्रथम मंत्र में कहा गया है कि इस संसार में जो कुछ भी है उस सबमें ईश्वर का वास है। उसका भोग त्याग की भावना से करो। लोभ, लिप्सा या आसक्ति से नहीं। यह धन किसी व्यक्ति का नहीं हैं उसका उपयोग 'इदं न मम' के भाव से, सत्प्रात्रों में वितरण के लिए अथवा समाज के कल्याणार्थ किया जाए।

वाणी का संयम दूसरा आदर्श है। अनर्गल वार्तालाप, अधिक बोलना, निरर्थक वाद-विवाद में समय नष्ट करना, दूसरों को नीचा दिखाने के लिए, अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के उद्देश्य से ज्यादा बोलना-इन सबसे असत्यभाषण को बल मिलता है। इसलिए मितभाषण। कम बोलेंगे तो झूठ बोलने के अवसर कम होंगे। इसका अर्थ आवश्यक होने पर भी चुप्पी साधे रहना नहीं है। शब्दों, अर्थों और उनके अभिप्राय को समझ कर बोलना। मितभाषण और सत्यभाषण में एक पारस्परिक संबंध है।

गीता में कहा गया है कि एक सम्मानित व्यक्ति के लिए अपयश मृत्यु से भी बढ़कर है (२/३४)। एक सम्मानित जीवन की इच्छा सामान्यत: हम सब की स्वाभाविक इच्छा है। मान-अपमान से ऊपर उठना संन्यासी के लिए कर्तव्य है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए सम्मानित सामाजिक-जीवन अभीष्ट है। उतना ही अभीष्ट यह भी है कि हम इस सम्मान के अधिकारी होने के लिए जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते रहें। यजुर्वेद (२९/४) तथा अथर्ववेद (६/५८/२) में जहां दीर्घजीवी और यशस्वी होने की प्रार्थना की गई है, वहां (२/१०) में यह भी कहा गया है कि हमारी कामनाएं सत्य पर आधारित हों। इस प्रकार सत्यनिष्ठा के साथ विजय और सफलता के पथ पर चलते हुए हम यशस्वी हों। यह भारत का सांस्कृतिक वैशिष्ट्य है।

कालिदास ने हमें जो सूत्र दिया है, वह है, विजय अपने भौतिक साम्राज्य का विस्तार करने के लिए नहीं, अपने यश का विस्तार करने के उद्देश्य से होनी चाहिए ताकि सफलता के उज्ज्वल कीर्तिमान स्थापित हो सकें, लोग उन्हें आदर्श के रूप में ग्रहण करके उस मार्ग को अपनाएं। तुलसी ने राम के जन्म के कारण बताते हुए कहा है, **'जग विस्तार हिं बिसद जस, राम जन्म कर हेतु'।**[१८]

विवाह तथा पति-पत्नी का संसर्ग प्रजा में नैरन्तर्य बनाए रखने के लिए है। इसे सामाजिक दायित्व मानते हुए सन्तानोत्पत्ति कर्तव्य है। मात्र कामोपभोग, जिसे विलियम हैरिस ने पाशविक मौज मस्ती कहा है, दाम्पत्य का लक्ष्य या धर्म नहीं है। 'काम' हमारे पुरुषार्थ-चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष- का अंग है। श्रीकृष्ण ने काम को अपनी एक विभूति बताते हुए (गीता[१०/२८]) कहा है कि प्रजा की उत्पत्ति के उद्देश्य से सेवित काम भी ईश्वर का रूप है। पर उन्होंने यह भी कहा है कि धर्म की मर्यादा में रहते हुए ईश्वर काम का रूप है (७/११)। अर्थ हो या काम, हमारी संस्कृति में, इन दोनों को धर्म और मोक्ष के मध्य में स्थान दिया गया है। धर्म अर्थात् कर्तव्य, अनुशासन, मर्यादा-व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, वैश्विक, लौकिक, वैदिक, आध्यात्मिक। धर्म का स्वरूप हमारे यहां इतना व्यापक है कि इसके अन्तर्गत नैतिक, विधिसम्मत, ऐहिक और आमुष्मिक, सभी कर्तव्य आते हैं। और अर्थ तथा काम के दूसरे छोर पर मोक्ष है- आध्यात्मिक, आमुष्मिक लक्ष्य।

दूसरा श्लोक

कालिदास ने कहा है, बाल्यकाल में शिक्षा प्राप्ति-ज्ञानार्जन। युवास्था में विषयों का सेवन अर्थात् अर्थ और काम के पुरुषार्थ। वृद्धावस्था में वैराग्य का अभ्यास, जिसे गीता में **'शनै:शनैरुपरमेत्'** (६/२५) कहा गया है। क्रमश: सांसारिक विषयों से धीरे-धीरे मन को अलग करना। इन्द्रियों के उनके प्रति झुकाव को सीमित करते हुए केवल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नियमित करना। फिर योग का आश्रय लेकर अपनी आस्था के अनुरूप स्वयं को परमात्मा से जोड़ कर अथवा आत्मसाक्षात्कार के उद्देश्य से चित्तवृत्तियों का निरोध करने का अभ्यास (पतंजलि, योगसूत्र १/२) करते हुए देह-त्याग।

इस श्लोक में अत्यंत संक्षेप में-चार सूत्रों में- भारतीय आश्रम-व्यवस्था की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। बाल्यावस्था ब्रह्मचर्य अर्थात् संयमित, अनुशासित जीवन के साथ वेदाध्ययन; वर्तमान संदर्भ में शिक्षा की प्राप्ति का समय। छान्दोग्य उपनिषद् (७.१) में नारद-सनत्कुमार-संवाद में नारद सनत्कुमार को बताते हैं, 'मुझे चारों वेदों, इतिहास-पुराण, व्याकरण, गणित सहित बारह से भी अधिक प्रकार की विद्याओं का ज्ञान है। इतने पर भी मैं मन्त्रवेत्ता ही हूं, आत्मवेत्ता नहीं हूं। मैंने सुना है कि आत्मवेत्ता शोक को पार कर लेता है-

तरतिशोकमात्मवित्, परन्तु मैं शोकमुक्त नहीं हूं। कृपया मुझे शोक के पार कीजिए- **तं मा भगवन् शोकस्य पारं**

नयतु'। इस के बाद नारद को सनत्कुमार क्रमिक रूप से आत्मज्ञान की शिक्षा देते हैं, जिससे नारद अज्ञान के अंधकार से पार हुए। इस प्रसंग में निम्नांकित उल्लेखनीय संकेत हैं-

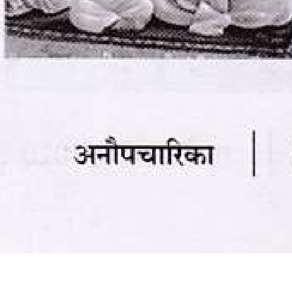
-छान्दोग्य उपनिषद् हमारे प्राचीनतम उपनिषदों में से एक है[१५]। इस प्रसंग में बारह से अधिक प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की शाखाओं का उल्लेख है। यदि चार वेदों, इतिहास और पुराणों की गणना अलग-अलग की जाए तो यह संख्या कहीं अधिक हो जाती है। नारद (इस नाम को प्रतीकात्मक भी मान सकते हैं) इन सभी शाखाओं में पारंगत होने के बाद भी शोकमुक्त नहीं हुए और सनत्कुमार के पास शोक-मुक्ति के उपाय की शिक्षा प्राप्त करने गए थे।

-यह निष्कर्ष असंगत नहीं है कि नारद ने विद्या अध्ययन की औपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्रावस्था में ही इन विभिन्न शिक्षा-शाखाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। इस घटना को यदि आज के संदर्भ में रूपान्तरित किया जाए तो हम कह सकते हैं कि नारद ने कला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, भूगोल, गणित, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विविध क्षेत्रों की विद्या का अध्ययन किया था।

-इतना सीखने के पश्चात् भी नारद को शोकमुक्ति नहीं हुई थी। जो शिक्षा उन्हें सनत्कुमार से मिली उसी से वे शोकरूपी अन्धकार के पार हुए : **'तमसः पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारः'।**

-शिक्षा का उद्देश्य बहुत सारे विषयों, बहुत सारी पुस्तकों को पढ़ लेना, उन पर सैद्धान्तिक रूप से अधिकार प्राप्त कर लेना नहीं है। **विद्या सा या विमुक्तये,** विद्या का लक्ष्य है मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक रूप से स्वाधीनता का अनुभव करना; यह अनुभव ही मोक्ष है। विलियम हैरिस ने क्षणिक मौज-मस्ती के आकर्षण को





छोड़कर जिस शाश्वत स्वाधीनता की बात की है, उसके लिए **सतत अध्ययन, चिन्तन, मनन** के द्वारा न केवल सैद्धान्तिक अपितु व्यावहारिक, न केवल व्यावहारिक अपितु पारमार्थिक - तात्विक-ज्ञान की उपलब्धि आवश्यक है। छांदोग्य उपनिषद् में सनत्कुमार ने पच्चीस खंडों में नारद को 'शोक से पार' जाने की शिक्षा दी है। और इससे पहले नारद जिन विषयों पर अधिकार प्राप्त कर चुके थे, उनका उल्लेख ऊपर कर आए हैं भाव यह है कि शिक्षा एक दीर्घकालीन, जीवन पर्यन्त, निरंतर चलते रहने की प्रक्रिया है।

-जितने भी भौतिक ज्ञान-विज्ञान हैं, अपने अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण हैं, सांसारिक सफलता के लिए उपयोगी हैं। पर जैसा कि राधाकृष्णन् कहते हैं, आर्थिक व्यक्ति जो उत्पादक और उपभोक्ता है, बौद्धिक या वैज्ञानिक व्यक्ति, पूर्ण मनुष्य नहीं है और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दिया जाना चिंता का विषय है।

-व्यष्टि जीवन हो या समष्टि जीवन, जब तक हम आत्मचिंतन नहीं करते, अपने अन्तर्विरोधों, विषमताओं, पारस्परिक विद्वेष आदि दोषों की पहचान नहीं करते, जब तक समाज के तत्त्ववेत्ताओं, आध्यात्मिक मनीषियों- सनत्कुमार उन्हीं के प्रतीक हैं- की बात नहीं सुनते, तब तक व्यक्तिगत हो या समष्टिगत, शोक, वैमनस्य, घृणा, विद्वेष-अज्ञान और अंधकार के इन सारे प्रतीकों से हम मुक्त नहीं हो सकते। आज के विश्व-समाज में व्याप्त विभिन्न-स्तरीय कलह, अशान्ति और हिंसा के लिए वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था मुख्य रूप से उत्तरदायी है। राधाकृष्णन् कहते हैं कि इन से मुक्त होने के लिए हमें अपने प्राचीन सत्साहित्य का अध्ययन करना होगा।

सतत शिक्षा के चार सोपान : चार आश्रम

कालिदास ने यद्यपि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, इन आश्रमों का नाम तो नहीं लिया, पर इन के अन्तर्गत आने वाले कर्तव्यों की ओर स्पष्ट संकेत किए हैं। बचपन में विद्या का अभ्यास-समाप्ति नहीं- यौवन में विषय सेवन, वृद्धावस्था में वैराग्य तथा अंतिम अवस्था में आत्मचिन्तन/ईश्वर चिंतन करते, समस्त कर्तव्यों से निवृत्तिपूर्वक देहत्याग।

शिक्षा और गृहस्थाश्रम

ब्रह्मचर्याश्रम की बात हम ऊपर कर आए हैं। वह शिक्षा के अभ्यास का समय है। पर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर क्या शिक्षा-सत्र की समाप्ति हो जाती है? शिक्षा तो एक सतत, आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। एक रोचक तथ्य यह है कि यदि संस्कृत के एक शब्द शिक्ष् से शिक्षा का व्याहरण होता है, तो शिक्ष् के एक पूर्ववर्ती शब्द शिक्कु के अर्थ हैं, 'निकम्मा', 'निष्कर्मण्य', 'आलसी'। शिक्षा यदि उत्तरोत्तर, निरंतर विकास की बुनियादी शर्त है तो उसका छूट जाना, निकम्मेपन, आलस्य, निष्कर्मण्यता की ओर, पिछड़ेपन के गर्त की ओर धकेलता है। वैसे तो अनौपचारिक शिक्षा हमारे अनजाने में हमें मिलती रहती है, पर क्या हम सचमुच उससे सीखते हैं? उसके प्रति सजग रहने से, उसे आत्मसात् करने और व्यवहार में इसका उपयोग करने से वह शिक्षा प्राय: पुस्तकीय ज्ञान से कहीं अधिक लाभदायक सिद्ध होती है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में शिष्य जब गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व आचार्य से विदा लेता है तो आचार्य अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित तीन बातें कहते हैं–

-संतान परम्परा को सुरक्षित रखना चाहिए। **'प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सी:'।**

–अर्जित ज्ञान को दूसरों में वितरित करते रहना और स्वाध्याय करते रहना चाहिए। **स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।**

इससे पहले के एक उपदेश में आचार्य ने हर कर्तव्य के साथ स्वाध्याय प्रवचन शब्दों की बार-बार पुनरावृत्ति की है- सदाचार पालन में, सत्यभाषण में, तप में, इन्द्रियों के संयम में, विहित कर्मों के निष्पादन में, अतिथि सेवा में, लोकव्यवहार में, दाम्पत्य जीवन से जुड़े कर्तव्यों में, तथा अन्य सभी कार्यों में। पढ़ने-पढ़ाने, सीखते-सिखाते रहने की प्रक्रिया की बात बार-बार कही गई है। इसके साथ ही,

–'यदि अपने कर्तव्य का निर्वाह करते समय, धर्म पालन करते समय अथवा किसी अन्य कार्य में तुम्हारे मन में किसी प्रकार की दुविधा या शंका उत्पन्न हो जाए, कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय करने में कठिनाई हो तो ऐसी स्थिति में जो तुम्हारे आस-पास सम्मर्शी-उचित परामर्श देने वाले अनुभवी, विद्वान हों, उनसे संपर्क करो। उनसे सलाह लेकर अथवा जैसा व्यवहार और आचरण वे करते हों वैसा ही उचित व्यवहार तुम करो।'[10]

उपनिषद् के इस मार्गदर्शन में गृहस्थाश्रम में रहते हुए जहां एक ओर स्वाध्याय और उसका वितरण करने की शिक्षा है और ऐसा हर प्रकार के कार्य के साथ करते रहने पर बार-बार बल दिया गया है, वहीं पर दूसरी ओर व्यावहारिक ज्ञान के लिए अनुभवी और हित चिंतक व्यक्तियों के अनुभव का लाभ उठाने की सलाह भी दी गई है। इस प्रकार गृहस्थ में रहते हुए भी सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान की निरन्तर आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। दैनन्दिन जीवन में सफलता-असफलता, माता-पिता, संबंधियों, सामाजिक रीतियों-कुरीतियों, सभी से हम विधि-निषेध की शिक्षा ग्रहण करते हैं। अपने ज्ञान को और अनुभवों को दूसरों में वितरित करते हैं। इस प्रकार करते रहने पर शिक्षा की निरंतरता बनी रहती है।

शिक्षा और वानप्रस्थ

वानप्रस्थ का शाब्दिक अर्थ यों तो वन को प्रस्थान करना अथवा वन में जा रहना है, पर आज के संदर्भ में इसे गृहस्थ से जुड़ी आसक्तियों से स्वयं को अलग करने का अभ्यास करने के अर्थ में लिया जा सकता है। अगली पीढ़ी को क्रमश: अपना उत्तरदायित्व सौंपना, मनु के शब्दों में, **'पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत्'** – पुत्र के स्वामित्व में सुखपूर्वक निवास करना (६/९५)।

आजकल हम में से अधिकतर लोग एकल परिवारों में रहते हैं। अवकाश-प्राप्ति के पश्चात् भी वह अवकाश नहीं मिलता जिसके साथ वानप्रस्थ की अवधारणा जुड़ी हुई है। अपने अपने छोटे गृहस्थों से जुड़े





कर्तव्यों से अवकाश नहीं मिलता, क्योंकि बच्चे साथ नहीं रहते। पर इस के गुण-दोषों पर विचार करना इस निबंध का विषय नहीं है। ऐसे में वानप्रस्थ का अर्थ है कि हम अपने काम करते हुए मन से वनवासी हो जाएं। गीता में जिन्हें निषिद्ध अथवा वर्जित कर्म कहा गया है, वे तो प्रत्येक आश्रम में ही वर्जित हैं- चोरी, झूठ, छल-कपट, व्यभिचार, हिंसा आदि। गृहस्थाश्रम में जुड़े जो काम्य कर्म जो हम मोह या आसक्ति वश करते हैं, उनका त्याग करने का अभ्यास और जो कर्म अनिवार्य रूप से करने हैं, उनके प्रति एक निस्पृहता का भाव। **'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'** कर्म। शारीरिक रूप से घर में रहते हुए मानसिक रूप से विरक्ति। अपने सरीखे वानप्रस्थों की संगति। यही वानप्रस्थ है। इस के साथ वानप्रस्थ में रहते हुए एक दूसरे से सीखने का, सत्साहित्य के पठन-पाठन का क्रम चलता रहता है। **'स्वाध्याये नित्ययुकतः स्यात्।'** (मनु. ६/८)

संन्यासी, योगी और शिक्षा

यों तो भौतिकता प्रधान हमारे इस युग में संन्यास भी प्रलोभनों और विषयों के आकर्षण से मुक्त दिखाई नहीं देता, फिर भी समाज में ऐसे कुछ महापुरुष विद्यमान हैं जो संन्यास-धर्म का निष्ठा-पूर्वक पालन करते हैं। वे समाज के आध्यात्मिक गुरुओं की भूमिका का- गृहस्थों को आध्यात्मिक-संपदा प्रदान करने का निस्पृहतापूर्वक पालन करते हैं। गीता (६/१) में कहा गया है कि संन्यासी वह है जो कर्म के फल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है- **कार्य कर्म करोतिय:** - वही संन्यासी है, वही योगी: ऐसा योगी, ऐसा संन्यासी, जिसका अन्त:करण 'ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है' - **ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा** (६/२)।

कालिदास ने **'योगेनान्तेतनुव्यजाम्'** के द्वारा जीवन के अंतिम वर्षों में ईश्वर चिंतन की बात कही है। श्रीकृष्ण ने कहा है (८/५) कि 'अन्तकाल में मेरा स्मरण करते हुए जो देह त्याग करता है, वह निस्संदेह मुझे प्राप्त करता है- **अन्तकाले च मामेव स्मरन्.... प्रयाति स मद्भावम्'।**

आजकल पाश्चात्य देशों की तरह हमारे यहां भी वृद्धाश्रमों का चलन चल निकला है। यह एकल परिवारों की विवशता है जिस कारण वृद्ध माता-पिता को अलग रहना पड़ता है अथवा बच्चे और स्वयं माता-पिता भी स्वतंत्र रहना चाहते हैं। यह स्थिति हमारी सांस्कृतिक परंपरा के अनुकूल न होते हुए भी इसका सकारात्मक पक्ष यह है कि सही ढंग से संचालित वृद्धाश्रमों में अपने ही आयुवर्ग के लोगों के बीच एक समानुभूति एम्पेथी-विकसित होती है। एक दूसरे के सुख-दुख में सहयोग करने की प्रवृत्ति बनती है। यदि अपने जैसे इन लोगों के बीच रहते हुए हम आध्यात्मिक विचारों का आदान-प्रदान कर सकें, डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में, 'प्राचीन सत्साहित्य' का अध्ययन कर सकें, तो इस लेखक के विचार में यह श्रेष्ठ संन्यासी जीवन जैसा हो सकता है। ऐसा कहते हुए हम वृद्धाश्रमों के चलन का, बच्चों द्वारा माता-पिता के प्रति उदासीन हो रहने का, समर्थन नहीं कर रहे, परन्तु एक सामाजिक स्थिति को स्वीकार करते हुए उसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने की बात कह रहे हैं। व्यर्थ शोक करने और समय नष्ट करने के स्थान पर स्वाध्याय, प्रवचन, मनन, चिंतन और पारस्परिक सामाजिक सेवा-कार्यों में उसका सदुपयोग कर सकते हैं।

एक श्रेष्ठ जीवन सदा सुगम जीवन नहीं होता। **कठोपनिषद्** (१.२.१-२) में प्रेय और श्रेय, दो मार्गों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि धीर पुरुष प्रेय मार्ग की अपेक्षा श्रेय मार्ग का चुनाव करते हैं। जीवन के हर क्षेत्र, हर अवस्था में बाधाएं और कठिनाइयां आती हैं। श्रेय मार्ग अपनाने वाला व्यक्ति 'शाश्वत स्वाधीनता' (फ्रीडम ऑफ इटरनिटी) के पथ पर अग्रसर रहता है। यह मार्ग कठिन है: **'क्षुरस्य धारा, दुर्गपथ:'** (कठ १/३/१४) जैसा है। गीता में **'सात्विक सुख'** को परिभाषित करते हुए उसे **परिणामेऽमृतोपमम्** कहा गया है, आरंभ में वह भले ही विष जैसा प्रतीत हो (१८/३७)।

विकास की यात्रा में पशु-जीवन से मानव जीवन, मानव जीवन से दिव्य-जीवन की ओर ऊर्ध्वगमन का पाथेय निरंतर शिक्षा-स्वाध्याय प्रवचन ही है। ❑

-करुणायतन, १०६४/१, सेक्टर ३९-बी, चण्डीगढ़-१६००३६

संदर्भ और अन्त्य संकेत -

१७. रघुवंश १.७,८
१८. रामचरितमानस १२१
१९. डॉ. राधाकृष्णन् ने कार्ल जैस्पर्स को उद्धृत करते हुए इसके सहित आठ अन्य उपनिषदों का समय ८०० से ३०० वर्ष ईसा पूर्व बताया है (द प्रिंसिपल उपनिषद्स; लंदन, जॉर्ज एलेन एंड अन्विन, १९५३, पृष्ठ २२। परम्परागत भारतीय विचार में यह इस काल से भी बहुत प्राचीन है।)
२०. तैत्तिरीय उपनिषद्, प्रथम वल्ली, ११ वां तथा ९ वां अनुवाक
२१. दे. प्राणनाथ पंकज: मानव जीवन के चार सोपान एवं हिन्दू-संस्कृति (नई दिल्ली, सुरुचि प्रकाशन २००२, पृष्ठ ७९-८०)

(निबंध में दिए गए संस्कृत और अंग्रेजी उद्धरणों का अनुवाद लेखक द्वारा)

आलेख



ओमा शर्मा

अध्यापक की भूमिका

आज हमारे समाज में लगातार चारों तरफ धोखा-धड़ी और अपराध बढ़ रहे हैं। इन सबके चलते अध्यापक की भूमिका अहम् हो जाती है। ओमा शर्मा स्वयं अध्यापक रहे हैं। उनकी दृष्टि में एक 'सच्चा' अध्यापक वह नहीं है जो केवल ज्ञान को संप्रेषित करता हो। अध्यापक वह है जो ज्ञान के विस्तार में जाता है, उसकी तहों को खोलता है और उसके दूसरे पहलू क्या हैं? इन सब पर विचार करता है। बालकों के मन में भी सवाल पैदा करता है। वे यह भी कहते हैं कि अध्यापक अपनी कक्षा के किसी भी बच्चे को फूहड़, नादान या कमजोर समझने की गलती कभी ना करें। प्रस्तुत आलेख में वे अपने अनुभवों को साझा कर रहे हैं। सं. ❑

इतनी तादाद में अपने अध्यापकों को नगरपालिका, रोटरी क्लब और दूसरी सामाजिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित किए जाने के अवसर का गवाह बनने पर मैं खुद गौरवान्वित महसूस कर रहा हूं। मेरे लिए सम्बद्ध संस्थाएं ही नहीं, आनन्द जिले का समूचा गुजराती समुदाय अभिनंदन का पात्र है। हम लोग उम्र, शोहरत और हैसियत में कोई मक़ाम हासिल कर लें, देश-परदेश कहीं जा पहुंचें, मगर अपने माता-पिता और अपने अध्यापकों के समक्ष सब भूल-भालकर वही 'नन्हा-मुन्ना' बच्चा/विद्यार्थी बने रहने को आतुर से रहते हैं जबकि उन्हें हमारे हासिलों पर कहीं उम्मीदजदा सहज-शांत फक्र हो रहा होता है। यही वे लोग हैं जो अपनी बुनियाद और मानसिकता में, बिना किसी प्रतिदान या अपेक्षा के, हमारी खुशी, प्रगति और बढ़ोत्तरी के बारे में आजीवन सोचते रहते हैं। उन्हें वाकई किसी सम्मान की जरूरत या आकांक्षा नहीं होती है। एक अध्यापक का सम्मान सीधे-सीधे उसके विद्यार्थी होते हैं। जब एक अध्यापक अपनी क्लास में पढ़ाने को खड़ा होता है तब वह यह जरूर देखना चाहता है कि जो बात, ज्ञान और अनुभव का कोई टुकड़ा, वह अपने विद्यार्थियों को सौंपना चाह रहा है, वह उन तक भली-भांति संप्रेषित हो जाये! और जब विद्यार्थी पूरी शिद्दत, तत्परता और जिज्ञासा से उसे ग्रहण करते प्रतीत होते हैं तो उसे लगता है कि उसका मनोरथ सध गया है। और कभी जब उसे ऐसा होता नहीं लगता है तो वह कहीं मायूस सा होता है, अगली कक्षा के लिए थोड़ी और मेहनत करता है, उसे एक चुनौती के रूप में लेता है ताकि बात बन सके। आकांक्षा-सिक्त उसकी मेहनत जब जब कारगर होती है तो उसे वह सब मिल जाने की तृप्ति होती है जो कोई मान-सम्मान या मानदेय कभी नहीं दे सकते हैं।

लेकिन इन दिनों क्या हो रहा है? हम देखते हैं कि लगातार हमारे समाज में चारों तरफ ऐसी प्रवृत्तियां पनप रहीं है जिनकी हम कल्पना नहीं कर सकते । हर क्षेत्र में फरेब-धोखाधड़ी और अपराध ही नहीं बढ़ रहे हैं, युवा

पीढ़ी नई-नई और ऐसी कारगुजारियों में मुब्तिला दिखती है जिन पर हम सब सिर्फ आश्चर्य मिश्रित अफसोस ही कर सकते हैं। हम समाज में होने वाली बहुत सारी अच्छाइयों और ऊंचाइयों को हासिल करने के लिए अपने शिक्षकों को क्रेडिट देते हैं, उनकी सेहराबन्दी करते हैं, तो क्या जो वृहत्तर समाज की कुरीतियां और चुनौतियां हैं, उन पर हम उनको कहीं कसूरवार ठहरा सकते हैं? निश्चय ही यह मौका इस तरह से चीजों के विमर्श करने और दोषारोपण का नहीं है।

कभी आप सोचकर देखें कि एक अध्यापक ऐसा क्या देता है जो दूसरे लोग नहीं दे सकते? आप कहते हैं : ज्ञान। अध्यापक ज्ञान देता है। लेकिन ज्ञान तो हमें दूसरी बहुत बहुत जगहों से भी मिल जाता है। मसलन, ज्ञान हमें किताबों से मिलता है, अपने मां-बाप से मिलता है, ज्ञान हमें अपने सहपाठियों से मिलता है और आज कल तो परम ज्ञान गूगल पर उपलब्ध है। गूगल की मार्फत आपकी हथेली पर दुनिया-जहां का एक से एक ज्ञान हाजिर रहता है। तो ऐसी क्या चीज है जो एक अध्यापक ही दे सकता है जिसके लिए माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल-कॉलेज भेजते हैं? अपने जीवन में पीछे मुड़कर देखें तो प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षा संस्थाओं तक, तो कम से कम चालीस-पचास अध्यापक हमारे दायरे में आए होते हैं। लेकिन याद करने चलें तो चार-पांच से ज्यादा अध्यापकों को शायद ही कोई याद कर पाए। बहुतों की तो उन्हें शक्लें तक याद नहीं आएंगी। उन चार-पांच अध्यापकों में ऐसा क्या था? आप सभी अध्यापक जो यहां बैठे हुए हैं, इस बात पर कुछ देर अवश्य विचार करें कि आप ऐसा क्या कर सकते हैं... क्या मैं ऐसा कर रहा हूं या कर रहीं हूं... मैं ऐसा क्या करूं कि मैं अपने विद्यार्थियों की स्मृति में पचास साल बाद भी उपस्थित रह सकूं! पंद्रह-बीस साल बाद जब ये भोले-मासूम या शरारती बच्चे जब जीवन के अपने-अपने मुकामों पर पहुंचेंगे और कभी मुझसे सामना होगा या बात चलेगी, तो क्या वे मुझे पहचान लेंगे? आदतन प्रणाम करते हुए कह उठेंगे कि आप कल्पना मैम या मीरा मैम या विजय सर हैं... हो सकता है वे भूल जायें कि आप क्या पढ़ाते थे लेकिन उनको यह याद रहेगा कि 'हां आप बहुत अच्छा पढ़ाते थे'। स्मृति का यह रहस्यमय खेल है कि उसके फ़िल्टर जरूरी चीजों को बिसराते हुए भी उसका कुछ अंश अपनी तरह से संजो लेते हैं।

किसी अध्यापक की मार्फत अपने छात्र तक जाता है तो वह उसमें ठहरता है क्योंकि छात्रों तक पहुंचने वाले शब्द अध्यापक के फिल्टर से निथरकर आ रहे होते हैं। लेकिन अपने किसी भी रूप में वह ठहरेगा तब जब वह अध्यापक के पूरे मन-स्थल से निकल कर आया हो। कोई अध्यापक केवल दायित्व-बोध के तहत पढ़ाने की कोशिश करता है तो वह छात्रों के ऊपर-ऊपर से ही निकलता है। जब वह ज्ञान ही नहीं ठहरेगा तो समझा जा सकता है कि उसके प्रेषक की स्मृति के ठहरने की क्या संभावना होगी। किसी अध्यापक ने उस ज्ञान को कितना आत्मसात किया है, और किस संलग्नता के साथ, वह उसे अपने विद्यार्थियों तक संप्रेषित कर रहा है, जब यह मर्म अपनी जगह जा लगेगा तो सम्भावना है कि वह प्रभाव छोड़ेगा। अपने गंतव्य यानी विद्यार्थियों के मन:स्थल पर जगह बनाएगा। ध्यान रहे आपका काम सिर्फ ज्ञान को संप्रेषित करना नहीं है। आपका काम है उस ज्ञान के विस्तार में जाना, उसकी तहों को कुरेदना, उसके दूसरे पहलू क्या हैं समेत उसकी अहमियत के तमाम क्यों-क्या में सैर करना-करवाना अधिक है।

इसी से जुड़ा आपका एक और काम है। अपने छात्रों के बीच जिज्ञासा जगाना, सवाल करना। इसलिये कोई विद्यार्थी यदि आपसे सवाल पूछता है, ऊपरी तौर पर चाहे वह कितना ही वाहियात सा हो, लेकिन आप उसको सुनिये और पूरे धैर्य से सुनिए। हो सकता है वह सवाल बहुत हास्यास्पद या नादानी भरा हो, लेकिन यह भी हो सकता है कि आपने अभी उस तरह से उन चीजों को नहीं देखा-सोचा हो जिस तरह से उसने अचानक पूछ लिया। और ऐसा नहीं भी है तब भी इस बात की गुंजाइश तो छोड़नी पड़ेगी कि चलने की राह में शुरूआती कदम लड़खड़ाते हैं। दरअसल जब हम कहते हैं कि अध्यापक का काम, गूगल, किताबें, मां-बाप और सहपाठियों... इन सबसे अलग और ऊपर है तो वह इस अर्थ में भी है कि एक अध्यापक ही अपने विद्यार्थियों के भीतर जिज्ञासा

शेष पृष्ठ...१६ पर



डॉ. अनामिका

अनामिका की कविताएं

पूर्णमिदम्

भूलभुलैया हूं!
एक तरफ से खुलती हूं
तो मुंदती हूं दूसरी तरफ से,
एक ओर आग से ढंकी हूं तो दूसरी ओर
नीली बरफ से!
मेरा कुछ हो ही नहीं सकता,
मैं अपने ही खिलाफ बैठी पंचायत हूं!
आयतें कहती हैं, अलग वर्ग है इसका
और वर्ग कहते हैं-एक कुन्द आयत हूं,
अलग पात है मेरी, अलग जात है मेरी,
फिर भी समझने के लायक हूं!
गायक हूं महाशून्य का-
शून्य से शून्य घटा, शून्य बचा!
ऐसा ही कुछ गुनगुनाती हुई,
रुद्रवीणा पर बजाती हुई
गा रही थीं सीता
बैठी जंगल में अकेली!
भेज चुकी थीं अपने लवकुश को
एक नयी दुनिया में!
स्रवन समीप भए सित केसा-
यह स्थिति जब किसी
महीयसी स्त्री के जीवन में आती है,
धूप-हवा सी वह तो बिलकुल महीन
और हल्की हो जाती है!
भली भई मेरी मटकी फूटी,
मैं तो पनिया भरन से छूटी!
फिर कोई रुद्रवीणा
किसी अधूरे स्वप्न से लेकर तार,
कल्पवृक्ष से लेकर लकड़ी
वह गढ़ ही लेती है
और छेड़ देती है इसी तरह महाशून्य पर
रागआसावारी!
बैठी ही थीं सीता
कि रावण आया उन्हें ढूंढता-
देवि,
अब तो हम दोनों ही
उम्र के उस मोड़ पर आ गए हैं
जहां प्रेम देह की कछार छोड़कर
हो जाता है एक मीठी आपसदारी!
इस मोड़ पर राम चले गए
तुम्हें छोड़कर...
बहुत भटककर फिरसे आया हूं
द्वार तुम्हारे!
क्या तुम मुझे रुद्रवीणा सिखाओगी?
सीता ने तिनके की ओट नहीं ली,
सीधा ही बोलीं इस बार-

कोई किसी और की रूद्रवीणा
कैसे बजाए भला?
जितना भटककर तुम आए हो मुझ तक,
उससे भी ज्यादा भटककर
मैं आयी हूं वापस अपनी खुदी तक!
यह रूद्रवीणा ही है अब तो मेरा वजूद!
खुद अपनी लकड़ियां काटो,
खुद रूद्रवीणा गढ़ो
जो भी लय-ताल सिखानी होगी,
प्रकृति खुद ही सिखा देगी!

घनानन्द

'अति सूधो सनेह को मारग है,
यहां नेकु सयानप बांक नहीं'
सूधो सनेह के मारग पर ही
तुम चले थे, महाकवि,
फिर भी यह बंकिमता!
कहीं-न-कहीं तो पगडंडी-सा
यह बांकपन आ ही जुड़ता है
प्रेम के सरल मार्ग से।
दुनिया के दरबार से
यों ही निकाल दिए जाते हैं प्रेमी
और टिककर बैठ जाते हैं मदमस्त
अपने वजूद की नदी के किनारे।
हंसते हुए खुद पर
ऐसी ही बांकी चुटकियां लिया करते हैं
तब वे
अपने लला से-
'तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो, लला,
मन लेहुं पे देहुं छटांक नहीं!'
कौन नहीं जानता-
प्रेम गणित की कक्षा में
हरदम पीछे बैठा,

जाओ महावीर,
फिर एक बार तुम्हें लौटा रही हूं
कि आघात ही मुक्ति का मार्ग है, बंधु,
इससे ही जगते हैं वीणा में राग!
खुद अपनी रागिनी सुनो और लौटो
अपनी खुदी तक!
तुम विराग के और रागों के भी
सर्वथा योग्य हो-
गायक हो महाशून्य का,
शून्य से शून्य घटा, शून्य बचा! ❑

खिड़की से देखता हुआ मेघदूत
या हिरामन सुआ,
तभी न्याय की देवी ने इसको तराजू नहीं दी,
पर दधीचि ने दे दीं अपनी आंखें-
सब हड्डियां दान देने के बाद जो बचीं
टिमटिमाती खोह में!
जिंदगी के श्लेष में अर्थ
लिपटा ही रहता है दोहरा
जैसे कि छटा आंकता यह छटांक
'बटखरा' भी समझा जा सकता है।
इसी तरह 'मन' बटखरे वाला
आराम से समझा जा सकता है
मन वो बहने और बहते चला जाने वाला
-सूधो-से मारग से
भंवरीली बंकिमता तक बहता
और अन्त में होता
दोनों के पार
'आनन्दघन' की तरह
बरसता उसी भाव से
पीठ फेर बैठी सुजानों पर,
दुनिया के जाने-अनजानों पर! ❑

पृष्ठ १३ से आगे...
के बीज रोपता है जो कालांतर में नई जिज्ञासाओं के रास्ते चीजों को निखार-संवार देते है। गूगल सिर्फ यांत्रिक ढंग से 'सुझाता' है जिसकी बुनियाद में नकलखोरी होती है, उन्मुक्त कल्पनाशीलता नहीं। एक बार जब आप अपने विद्यार्थी को कुछ बताने-समझाने लगते हैं तो उससे सम्बन्धित दस और चीजें उसके भीतर अंकुआने लगती हैं। इसलिए उससे सम्बन्धित जो पक्ष हो सकते हैं, उन पर संतोषप्रद रोशनी डालने के लिए भी उस अध्यापक को तैयार रहना चाहिए। आज हमारे जीवन का अपरिहार्य अंग बने मोबाइल या ईमेल तो तीस साल पहले तक नहीं थे! इसलिए अपने अध्यापक मित्रों से मैं पहला निवेदन यही करूंगा कि आप कभी यह ना मानें कि आपने मंजिल पा ली है या अब आपको पढ़ने-लिखने से मुक्ति रहेगी। वह एक सतत प्रक्रिया है जिसके तत्कालीन सिरे पर आप खड़े होते है। कोई कहे कि उसे सब ज्ञान हासिल हो गया है तो उससे बड़ा नादान कौन होगा? अपने आंख-कानों को खोलकर चलना-- खुद भी और अपने विद्यार्थियों को भी-- उस राह की तरफ प्रेरित करना, आपका मुख्य काम यही है। जब आप यह कर लेंगे तो आपको पता लगेगा कि यह रास्ता थोड़ा मुश्किल है। हो सकता है अपने विषय के अलावा आपको दूसरी चीजें भी पढ़नी पड़ें। अपने विषय की जो गहराई है, वहां भी जाना पड़े। लेकिन जब आप वहां जायेंगे तब आप संतुष्टि के उस स्तर पर पहुंचेंगे जो रूपांतरित होकर छात्रों की स्मृति में जगह बना लेती है... ऐसी जगह जो चार-पांच अध्यापकों को ही नसीब हो पाती है।

इसी के साथ जो बात जुड़ी है कि अध्यापक होना कोई नौकरी करना नहीं है। यह एक उदात्त पेशा है -या होना चाहिए-- अपने हासिल को अगली पीढ़ी को स्थानांतरित करके उसे बदलाव का संवाहक बनाने का। जब तक आपके मानस में अपने पेशे की पवित्रता के प्रति गहरा आत्म-बोध नहीं होगा, आपके भीतर की आवाज में वह अपेक्षित ऊष्मा नहीं आ सकेगी जो अपने वातावरण को उत्प्रेरित कर देती है। इस संदर्भ में आपसे गुजारिश होगी कि अपनी क्लास के किसी भी बच्चे को आप फूहड़, नादान या कमजोर समझने या उसके मानस को सींखचे में कैद करने की गलती कभी ना करें। हमारे बड़े से बड़े जो आविष्कारकों, वैज्ञानिकों, यहां तक कि लेखकों ने अपने स्कूल कॉलेज में शायद ही कभी तीर मारे हों। थामस एडिसन को उसकी मां ने घर पर पढ़ाया था। आइन्स्टाइन और बिल गेट्स बाकायदा यूनिवर्सिटी ड्राप-आउट रहे हैं। इन जैसों के हासिलों की परख अभी बाकी है लेकिन एक चीज जो इनके जीवन से जरूर सीखी जानी चाहिए वह होगी : खुले में सांस लेने की। इन्होंने साबित कर दिखाया कि कोई संस्था यदि ज्ञान के रास्ते में रोड़े अटकाती है, आड़े आती है तो उसका प्रतिकार रचा जा सकता है क्योंकि ज्ञान की– और आजकल तो और भी ज्यादा– कोई सीमा या तयशुदा लकीर नहीं होती है। बढ़ना और उद्दाम बढ़ना उसकी प्रवृत्ति ही है इसलिए वह बढ़ेगा और अपने बढ़ने पर भी सवाल करता दिखेगा। ज्ञान की इस भूमिका को हमेशा अपने से जोड़कर देखिये। दूसरी चीज-चीजें सब मिली हुई ही हैं– आप ये देखिये कि आप जो पढ़ाते हैं उसे आपने कितना आत्मसात किया यह तो महत्वपूर्ण है ही; बहुत सारी चीजें जो हम अध्यापकों से लेते हैं वह उनके आचरण से सम्बद्ध होती हैं। अगर आप कहते कुछ हैं, पढ़ाते कुछ हैं और करते कुछ हैं तो ये छोटे-छोटे जो नादान बच्चे हैं, जो कम उम्र में हैं, आप जिनको डांट सकते हैं, जिनको आप एबसेंट मार्क कर सकते हैं या प्रिंसिपल से शिकायत लगा सकते हैं, उनके भीतर आपके प्रति एक संदेह और आक्रोश भर जाएगा। महात्मा गांधी की आत्मकथा में दक्षिण अफ्रीका में स्थापित टोल्स्टोय फार्म के तहत चलाई जा रही शिक्षा पद्धति का एक अंश यहां उद्धृत करना चाहूंगा :

'टोल्स्टोय फार्म में हमने एक नियम बना रखा था कि बच्चों को कोई काम ऐसा न करने के लिए कहा जाए जो अध्यापक स्वयं न कर रहे हों; इसलिए जब भी उन्हें कुछ काम थमाया जाता, कोई न कोई अध्यापक जरूर उनके साथ सहयोग करता और वास्तव में हाथ बंटाता होता'।

शिक्षा और शिक्षकों की कोई चीज जब ऐसी सरल-सहज पारदर्शिता से निःसृत होगी तो वह अपने लक्ष्य तक सटीक लगेगी। अगर आप अनमने होकर पढ़ाते

हैं, पढ़ाते हुए गुस्सा करते हैं या सवालों को टालते हैं तो वह कमजोर और बुद्धू सा दिखता बच्चा भी इस बात को बहुत अच्छी तरह से समझ लेता है।

आपको अपने आचरण में भी हो सकता है बहुत सारी तब्दीलियां करनी पड़ें। सबसे बड़ी तब्दीली आपको यह करनी पड़ सकती है कि आप अपने पढ़े और पढ़ाए जाने के बारे में खुला मन रखें। यानी यह न मानें कि ये जो चीज है, अन्तिम है। दुनिया में ऐसा कुछ है ही नहीं। यानी उसका कोई दूसरा रास्ता भी हो सकता है। मसलन, एक गणित का सवाल है, आप उसको हल करके दिखाते हैं। कोई बच्चा कहता है कि सर, हम इसको ऐसा भी कर सकते हैं क्या? आपने उसको ए प्लस बी स्कायर के रूप में पहले से कुछ बना रखा है। आपका रवैया कुछ ऐसा रहे कि... हां बेटा चलो करके देखते हैं, होता है तो ठीक है, नहीं होता तो देखा जायेगा। यह बात मैं सिर्फ गणित के सन्दर्भ में नहीं कह रहा हूं, इसके बड़े और मनोवैज्ञानिक - सामाजिक आयाम हैं। जब हम कहते हैं कि **हम अपने विचारों को खुला रखें, ज्ञान की सारी खिड़कियों को खुला रखें तो यहां पर हम अपने मनुष्य होने की सम्भावनाओं की तरफ भी इशारा करते हैं** कि हमारी कमजोरियां और संकीर्णताएं क्या हैं और कैसे वे अवचेतन में हम पर अंकुश लगाए रखना चाहती हैं। वहां बैठकर ही आपको पता चलेगा कि अलग-अलग वर्गों से आये अध्यापक यदि एक दूसरे के साथ नहीं घुल-मिल रहे हैं या उनकी पोलिटिक्स चलती रहती है...तो समझ लीजिए की कुछ किये बिना बच्चों को आपने एक बड़ा सबक तो पहले ही दे दिया जो शायद आपने कभी चाहा भी नहीं! हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे बहुत अच्छे उदात्त रास्ते पर चलें मगर हम जैसे हैं वैसे बने रहें! यह कैसे संभव है? हम जात-पांत में पड़े रहें, हम क्षेत्र-धर्मों के बीच की दीवार बनाए रखें, हम लैंगिक भेद में फंसे रहें, हम ये मानें कि औरतें कमजोर होती हैं, हम उन पर फब्तियां कसें और हम अपने विद्यार्थियों के बारे में ये सोचें कि वो ऐसा नहीं करेंगे! हम बिल्कुल गलत सोचते हैं। अनचाहे में बच्चे आपसे इतनी प्रेरणायें लेते हैं, यहां तक कि आप किस तरह से बोलते हैं, हिचकी कब आती है आपको, आपकी हंसी कैसी है, आप किस बात पर कैसे गुस्सा करते हैं, किसी बात को सुनते हुए आपके हाव-भाव क्या होते हैं... वह सब गैर जरूरी भी उनके निरीक्षण का हिस्सा होता है। तो **अपने विद्यार्थियों को आप कभी कमजोर या अपने से कमतर ना मानें। इनकी उम्र कम है, इन्होंने पढ़ाई भी कम की है आपसे, लेकिन उनकी अपनी पूरी जिन्दगी भी है, उनका मस्तिष्क आपसे ज्यादा उर्वरक है और सबसे बड़ी बात यह भी कि वे आपसे 'आगे' के समय की पैदाइश हैं। आपने देखा होगा आप जिस मोबाइल या कम्प्यूटर से कुछ निकालने में पसीने-पसीने हो रहे होते हैं, एक बच्चा उसको फट से कर डालता है क्योंकि न सिर्फ उनका मस्तिष्क उर्वर है बल्कि वह एक अलग समय को जीता है।** ऐसे उर्वर मस्तिष्कों को बहुत नाजुकी, बहुत हौले से, बहुत एहतियात से सम्भालने की जरूरत है। आप ऐसा कर पाएं तो आप बीस-पच्चीस वर्ष या पचास वर्ष बाद याद रखे जाने वाले चार-पांच अध्यापकों में हो सकते हैं। और यही आपकी एक चुनौती है।

मैंने शायद निर्धारित से ज्यादा समय ले लिया है लेकिन जाने से पहले आपको क्या करना है और क्या नहीं करना है, इस पर कुछ कहना चाहता हूं: सबसे पहले एक हास्यास्पद लगाने सी बात कि आप अपने जीवन में मोबाइल का उपयोग कम से कम करिये। हम जिस समय में जी रहे हैं मोबाइल हमारी एक जरूरत है, लेकिन अगर आप उस पर एक बच्चे की तरह निर्भर रहेंगे तो अध्यापक होने की राह और मुश्किल होने लगेगी। इस मामले में आप खुद को अपने विद्यार्थियों जैसा न मानें। उनका जन्म एक अलग समय और सदी में हुआ है। उनकी दुनिया



और भूमिका अलग है। अगर आप एक मोरल पोजिशनिंग बरकरार रखना चाहते हैं तो अपने विषय और पेशे से प्यार करना सीखें। अध्यापन एक आम नौकरी वाला काम नहीं है। हो सकता है अध्यापन आपका पहला प्रेम न हो फिर भी आपको इसे इस तरह से लेना होगा कि ये एक नौकरी-भर नहीं है; यह एक मौका है। इसे मौका आप इसलिए भी मानिये क्योंकि आप और हम सबके अपने भी बच्चे हैं, उनके भी अध्यापक हैं। क्या आप नहीं चाहेंगे कि आपका बच्चा या बच्ची खूब तरक्की करे, उसे पढ़ाने वाले अच्छे-अच्छे अध्यापक मिलें? जो उसकी संभावनाओं को तलाशें और सीमाओं को तराशें? आपसे शुरुआत होती है और आप ही उसके अन्तिम स्रोत हैं। अगर हम कहें कि हमारे इंजीनियर खराब हैं, हमारे डॉक्टर खराब हैं, हमारे नेता खराब हैं, तो कहीं न कहीं उनके तार आप तक जुड़े होंगे क्योंकि उनके संस्कारों के बनने-बनाने की शुरुआत में आप कार्यरत होते हैं। ये ठीक है कि हमारे आचरण और विवेक को निर्धारित करने वाली बहुत सारी राजनीतिक और सामाजिक शक्तियां भी होती हैं। लेकिन एक अध्यापक का काम है क्लास में उन सबको रेखांकित करना और अगर हो सके तो उसे सही दिशा देना। मैं अभी फ्रांसीसी शिल्पकार रोदां की एक जीवनी पढ़ रहा था। ऑगस्त रोदां जो दुनिया भर में माइकलएंजेलो के बाद के आज तक के सबसे बड़े मूर्तिशिल्पी माने जाते हैं। रोदां को शुरू में ठीक से ड्राइंग करनी नहीं आती थी। उनके एक अध्यापक थे श्रीमान लैपर्ड जो बहुत अच्छे अध्यापक थे। उन्होंने देखा कि सारे बच्चे ठीक-ठीक बना रहे हैं, रोदां भी ठीक बना रहा है लेकिन रोदां उसकी बारिकियां ठीक से नहीं कर पाता है। उन्होंने उसके सामने एक मूर्ति रख दी और उसका चित्र बनाने को कहा। रोदां ने आउटर लाइन तो ठीक बना दी लेकिन जो उसकी नक्काशी थी, वह उससे नहीं पकड़ी जा रही थी। पता लगा कि रोदां को सात-आठ साल की उम्र में आंखों की तकलीफ थी जिसकी उसके मां-बाप को भी खबर नहीं थी तो उस बच्चे को तो क्या पता होती। यह भी एक अध्यापक की भूमिका होती है कि वह देखे कि कौन बच्चा क्या कर रहा है। तो ये छोटी-छोटी महती भूमिकायें हैं जो आपको तलाशनी-ओढ़नी होंगी। आप क्लास के हर बच्चे को एक विशिष्ट नागरिक के बजाय उन्हें 'सब धान बाईस पंसेरी' सा देखेंगे, तब आप अपनी भूमिका में कहीं असफल हो रहे होंगे।

इधर हमारी शिक्षा प्रणाली का मुझे जो बड़ा दोष लगता है– शायद जिसकी वजह से सारी शिक्षा प्रणाली दांव पर लगी हुयी है– वो यही है कि हमारे अध्यापकों ने पढ़ना बन्द कर दिया। विश्वविद्यालय के अपने कई समकालीन अध्यापकों से जब-तब मेरी बात होती है। मैं उनसे पूछता हूं आप क्या पढ़ाते हैं, वे कहते हैं मैं यह-यह पढ़ाता हूं। मैं फिर उनसे, जैसे अंग्रेजी के किसी अध्यापक से, पूछूं कि आपने अंग्रेजी की हाल-फिलहाल में कौन सी किताब पढ़ी है? आप एक दूसरे से संबन्धित विषय का ही यह सवाल पूछकर देखें। आपने अपने विषय की, पाठ्यक्रम से बाहर कौन सी पुस्तकें पढ़ी हैं तो बड़ी निराशाजनक हैरानी हाथ लगती है। वे बड़े मजे से कह जाते हैं कि टाइम नहीं मिल पाता है! ऐसा भी देखने में आया कि कुछ अध्यापकों ने बीस-पच्चीस साल-यानी अपने कॉलेज के दिनों से– कोई किताब नहीं पढ़ी है। यह सचमुच एक घातक और अक्षम्य स्थिति है। आप पढ़ने-पढ़ाने के, मेरे जाने दुनिया के सबसे पवित्र पेशे में हैं। आपके पास किताबें न पढ़ने और उनकी दुनिया में अपटूडेट न बने रहने का कोई विकल्प नहीं है। एक सफल अध्यापक आवश्यक तौर पर एक अच्छा विद्यार्थी ही हो सकता है। कहा जाता है कि किताबें हमारी सबसे अच्छी मित्र होती हैं। मुझे तो वे सबसे शालीन और धैर्यवान अध्यापक भी लगती है। मुझे अपने उन अध्यापकों की सोहबत बटोरने का हमेशा मन करता है जो मेल-मिलाप और दुनियादारी की बातों के बीच किसी नई पुरानी पढ़ी किताब अथवा किसी पत्रिका में प्रकाशित आलेख की बातें करने में सुकून महसूस करते रहे। दूसरी तरफ अध्यापक यदि कूपमंडूक हो जाएंगे– या उनके विद्यार्थियों को होते लगेंगे– तो बहुत गुंजाइश नहीं बचती है।

अध्यापन करना इबादत करने जैसा है। आपको इसी नीयत से रोज ब्लैकबोर्ड के आगे खड़े होना है।

email: omasharma40@gmail.com

ए-१२०५, हुबटाउन, सनस्टोन, एमआईजी क्रिकेट क्लब,
अवासाहबशहीन मार्ग, बांद्रा स्टेट, मुम्बई-४०००५१



देवेन्द्र पण्ड्या

बिन पानी सब सून

जल ही जीवन है और यह मानव जीवन की पहचान भी है। आज मानव रूपी जलाशय सूखते जा रहे हैं। ये जलाशय लोगों में बढ़ती भावशून्यता, संवेदनशीलता के बजाय संवेदनहीन हो रहे हैं। इससे न केवल मनुष्य के भीतर का जलाशय सूख रहा है, बल्कि वह कर्तव्यहीन एवं विवेकहीन भी होता जा रहा है। प्रस्तुत आलेख में देवेन्द्र पांड्या चिन्ता जता रहे हैं कि यदि राष्ट्र को बचाना है तो मनुष्य का चित्त, व्यवहार और उसकी सम्पूर्ण जीवन शैली में बदलाव जरूरी हैं ताकि जलाशय कभी प्रदूषित न हों तथा सूखने की स्थिति में भी न आ सकें। सं. ❑

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार सभी जीवों का उद्भव, उनकी संरचना तथा उनका परिचालन पानी से ही संभव है। यहां तक कि मानव रक्त का ८० प्रतिशत अंश पानी ही है। एक अर्थ में मनुष्य अपने आप में एक जलाशय है। परन्तु इन सजीव जलाशयों एवं पृथ्वी पर पाये जाने वाले अन्य जलाशयों में कुछ मानताओं के साथ-साथ कुछ विशिष्टताएं भी हैं। इन विशिष्टताओं को पानी के अन्य अर्थों के रूप में भी समझा जा सकता है। यथा मान, स्वाभिमान, संवेदनशीलता, प्रतिष्ठा, भावप्रवणता, मर्यादा रक्षण एवं जीवनमूल्य केन्द्रित गुणों से युक्त होना आदि। इसी सोच के आधार पर ऐसा अनुभव होता है कि पानी ही जीवन है। मानव की पहचान है तो सृष्टि का प्राण है। परन्तु अब मानव रूपी जलाशय का स्वरूप डरावना होता जा रहा है। इसके भीतर का पानी (संवेदनशीलता एवं भावप्रवणता) सूखता जा रहा है। ये जलाशय, संवेदनहीन, विवेकहीन एवं कर्त्तव्यबोध विहीन होते जा रहे हैं। कहीं कहीं तो ये जलाशय आंतकियों की कोख बनते जा रहे हैं। भावशून्यता से मानव जीवन नीरस होता जा रहा है, यही चिन्ता और चिंतन का विषय हैं। इसलिए कभी कभी यह भय लगना शुरू हो गया है कि यह भावशून्यता इन्हें किस दिशा में ले जायेगी, परंतु यह तो स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि इनका मूल्यहीन नीरस जीवन धीरे-धीरे कुम्हलाते हुए सफेद कद्दू की तरह भयानक शक्ल बनता जा रहा है इसलिए शिक्षा से जुड़े हर व्यक्ति व संस्थान का यह कर्त्तव्यकर्म है कि वो इस भावशून्यता व संवेदनहीनता को दूर करने में आगे आएं। साथ ही प्रश्न यह उठ रहा है कि आखिरकार यह संवेदनविहीन स्थिति बनी क्यों? हमें उन कारणों को जानना होगा तथा उसके समाधान के तरीकों को भी वापस अपनाना होगा।

अनुभव ने यह बताया है कि उपर्युक्त संवेदना विहीन स्थितियां तथा भावशून्यता के पीछे हमारी कुछ भूलें उत्तरदायी हैं जो हमने अपने आप को शिक्षित व विकसित तथा आधुनिकतावादी समझने के फेर में की हैं। हमारी वर्तमान पारिवारिक व्यवस्था, संयुक्त परिवार प्रथा का अंत होते जाना, सामाजिक व शैक्षिक संस्थाओं का अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक जाना, इलेक्ट्रोनिक

उपकरणों का बढ़ता उपयोग, परिग्रह से सामर्थ्यवान बनने की सोच, तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति के लिए जीवनमूल्यों का परित्याग करने की जीवन शैली तथा हमारी आधुनिक औद्योगिक संस्थाएं मानव की उच्च महत्वाकांक्षाएं एवं नकारात्मक सोच को जिम्मेदार कहा जा सकता है। यह बात इसलिए भी सही महसूस होती है क्योंकि बालक का बचपन तथा उसके वयस्क होने तक की अवस्था इन्हीं संस्थाओं से जुड़ी होती है। बालक जैसा देखता है, सुनता है तथा अनुभव करता है यह सभी बातें उसके सीखने व समझने तथा व्यवहार में लाने में अहं भूमिका अदा करती हैं। अत: आवश्यकता है हमारे समूचे परिवेश जिसमें सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक व राजनीतिक आदि घटक सम्मिलित हैं उन सभी की राष्ट्रनिर्माण के लिए अच्छे नागरिक तैयार करने की भूमिका निर्धारित करना है।

गांधीजी के तीन बंदर जिनका संदेश है बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो तथा बुरा मत बोलो। यह बात सुनने में बहुत अच्छी लगती है, परन्तु बंदरों की तीनों शिक्षाएं यह तो बताती है कि हमें क्या नहीं करना चाहिए पर यह नहीं बताती कि हमें क्या करना आवश्यक है। इस संदेश से जीवन का केवल एक पक्ष ही पूरा होता है। बालक को समाज में अपना वजूद बनाने एवं राष्ट्रनिर्माण में अपनी भूमिका सुनिश्चित करने में बहुत कुछ अच्छा देखना, अच्छा सुनना तथा अच्छा बोलना आदि को भी सीखना व समझना आवश्यक है। यदि उसने अच्छा देखा ही नहीं, अच्छा सुना ही नहीं एवं अच्छा बोलना जाना ही नहीं तो ऐसा बालक अपने लिए एवं समाज व देश के लिए क्या कर सकेगा। अत: यह भी परम आवश्यक हो जाता है कि बालक को जीवन के दूसरे पक्ष के बारे में भी समुचित जानकारी हो।

संवेदना का प्रादुर्भाव व्यक्ति के अन्तर्मन में पूर्व स्थापित भाव, इच्छाएं, श्रद्धा, आस्था तथा विश्वास के फलस्वरूप होता है। एक अर्थ में भाव तो संवेदना के जागृत होने का उद्गम एवं प्रथम चरण है। जब तक मानव मन में किसी के प्रति श्रद्धा ही नहीं है तो उसके प्रति अपनी अच्छी या बुरी प्रतिक्रिया कैसे अभिव्यक्त कर सकता है। अत: आवश्यकता है व्यक्ति के मन में पहले किसी के प्रति भाव या आस्था पैदा करने की फिर जैसे जैसे भावना बलवती होगी वैसे ही प्रतिक्रियाएं सहज रूप में देखने को मिलती हैं।

इसका सीधा सा अर्थ है देवता लकड़ी, पत्थर और मिट्टी से निर्मित मूर्तियों में विद्यमान नहीं रहते हैं। देवता भावों में विद्यामान रहते हैं। अत: जहां जैसी भावना होगी, वहां वैसा ही फल मिलता है। एक अर्थ में मनुष्य तो भावों से भीगा हुआ है। भाव प्रवणता से ही बात आगे बढ़ती है। इसी क्रम में भावों की स्थिति को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं। बालक अपने जनम के साथ कई विशिष्टताओं को अपने में लिए हुए होता है। जनम के साथ ही कई गुण उसके अन्तरमन में समाहित होते हैं परन्तु ये गुण स्वयं अपने आप बाहर नहीं आ जाते, उन्हें बाहर लाने हेतु प्रयास करने की आवश्यकता होती है। दूसरे अर्थों में इन्हें चैतन्यता प्रदान करनी होती है, जगाना पड़ता है। भाव भी इन्हीं गुणों में से एक समझा जा सकता है। परिवार, विद्यालय तथा अन्य कई सामाजिक, राजनैतिक संस्थाओं में रहकर बालक की भिन्न भिन्न स्थितियों में अन्त:क्रिया होती है। फलत: बालक के व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। इसे ही परस्पर अन्त:क्रिया द्वारा सीखना कहा गया है। जितनी अन्त:क्रिया स्वस्थ व प्रबल होगी उतना ही सीखना सशक्त बनता है।

शिक्षा का तात्पर्य संचित ज्ञान को भीतर ठूसना नहीं अपितु अन्तर्निहित शक्तियों को प्रस्फुटित करना है। अत: भावों के प्रस्फुटन हेतु शिक्षक का व्यवहार अधिक अंश तक प्रभावकारी होता है। स्पष्ट है कि शिक्षक अथवा परिवार या समाज के सदस्यों के शाब्दिक व्यवहार के साथ-साथ उनका अशाब्दिक व्यवहार भी बहुत महत्व रखता है। शिक्षण में संज्ञानात्मक पक्ष के साथ-साथ



असंज्ञानात्मक को भी मजबूत करने की आवश्यकता है। अस्तु संक्षेप में समाज व राष्ट्र को बचाना है तो भावों से भरे हुए जलाशयों को सूखने से बचाना होगा।

भावों की बात जीवन के हर क्षेत्र में यहां तक कि प्रकृति एवं प्रकृति में व्याप्त सभी चरा-चर जीव, वनस्पति जगत, पशु पक्षी तथा सभी समुद्री जीवों पर भी लागू होती है। यही बात पर्यावरण के प्रति हमारी संवेदनशीलता की ओर संकेत है। यही बात श्रीमद्भगवद्गीता में भी निरूपित हुई है। अर्जुन का युद्ध क्षेत्र में संवेदनशील होना मानव स्वभाव के अनुकूल लगता है। परन्तु अत्यधिक संवेदनशीलता व अति भावुकता कर्त्तव्य बोध के मार्ग में बाधक होती है तथा आगे जाकर घातक भी बन जाती है। ऐसी स्थिति में बुद्धि नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है। परन्तु भावप्रवणता सामाजिक संतुलन को बनाए रखने में आवश्यक भी है। समाज के अस्तित्व में ही व्यक्ति का अस्तित्व निहित है। अंग्रेजी सहित्य के मूर्धन्य उपन्यासकार डी.एच. लॉरेन्स द्वारा लिखित उपन्यास 'दी रेनबो' में 'दूसरे के प्रति अन्यत्व का भाव' की आवश्यकता एवं महत्व को दर्शाया गया है। लॉरेन्स ने समूची सृष्टि में 'ध्रुवता' के सिद्धान्त का संचालित होना अनुभव किया। लेखक के अनुसार मानव जीवन में श्रेष्ठ संबंधों का संतुलन तभी बना रहेगा जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की 'अदरनेस ऑफ अदर इनडिविजुअल्स' (अन्यत्व भाव) का अनुभव करे। संक्षेप में भावों से स्निग्ध होकर किया हुआ कार्य बड़ा ही संतोषजनक होता है एवं शांति का प्रदाता होता है। इसमें ईश्वर के सानिध्य की आकांक्षा भी पूरी होती है।

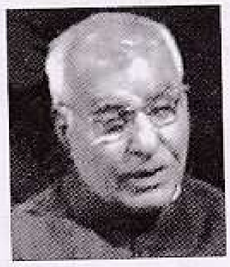
वर्तमान शिक्षा हमारे चरित्र को स्पर्श भी नहीं कर पा रही है। क्योंकि शिक्षा की वर्तमान पद्धति अत्यंत शोचनीय एवं चिंतनीय है। मौजूदा व्यवस्था में मनुष्य को विषयगत जानकारियां तो मिल सकती हैं लेकिन यथेष्ट ज्ञान की उपलब्धि के अभाव में मानव निर्माण का पक्ष अधूरा ही रह जाता है। तथ्यगत जानकारी से मनुष्य का मस्तिष्क तो भर जाता है परन्तु उसकी अन्तर आत्मा खाली की खाली ही बनी रहती है। न तो उसके अन्तःकरण का जागरण होता है, न उसके हृदय में खुद भावनाओं का प्रस्फुटन। हम प्रशिक्षण द्वारा पशु को मानव बनाने का उपक्रम तो करते हैं, परन्तु मानव को मानव बनाने में कुछ नहीं कर पा रहे हैं। जिस शिक्षा के द्वारा मनुष्य में सृजन धर्मिता के गुण का विकास होने के स्थान पर संहार की स्थितियां बनती हैं उसे शिक्षा कैसे कहा जा सकता है? शिक्षा तो सदइच्छा व सद्भाव के प्रसार का उपक्रम है। वस्तुतः मानवीय मूल्यों की स्थापना ही शिक्षा का केन्द्रीय तत्व है। तकनीकी ज्ञान द्वारा अर्जित विषय वस्तु जीवन यापन का साधन तो हो सकती है, साध्य कभी नहीं। मनुष्य स्वयं ही साध्य है। शिक्षा जो हमारे कल्याण को परिपूर्ण बनाती है, विवेक को सशक्त करने में सहायक होती है, जीवन में प्राण तत्व जागृत करती है, वही वांछनीय है।

मनुष्य के चित्त का स्वरूप भी जलाशय जैसा है। अतः चित्त को भी सही दिशा में बनाए रखने के प्रयास आवश्यक हैं। व्यक्ति का चित्त जैसे ही प्रभावित या आंदोलित होता है तो उसका सारा व्यक्तित्व एवं आचार-व्यवहार सभी कुछ उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। चित्त के भयग्रस्त होने की स्थिति में व्यक्ति अपने इष्ट मित्रों तथा परिजनों के प्रति भी सशंकित हो जाता है। चित्त के क्रोधावस्था में होने पर मानव रक्त की गति, आंखें और वाणी-व्यवहार असंतुलित तथा असंयमित हो जाता है। इसी प्रकार चित्त में वासना की तरंग उठती है, तो मन की स्थिति तथा व्यवहार की पवित्रता संदिग्ध हो जाती है एवं बुद्धि की आंखों में अंधत्व छा जाता है। कुल मिलाकर यह अंधत्व चित्त की विकृति का परिणाम है। संक्षेप में चित्त के आंदोलित होने से पूरा जीवन-चरित्र ही आंदोलित हो जाता है।

आवश्यकता है मनुष्य जीवन रूपी जलाशय जिसमें मनुष्य का चित्त, उसकी सोच, उसका व्यवहार तथा उसकी संपूर्ण जीवनशैली सम्मिलित है, को स्वस्थ बनाए रखने की। व्यष्टि एवं समष्टि के बीच समुचित संतुलन बनाए रखने हेतु पानीदार व्यक्तित्व विकसित करने की तथा हर व्यक्ति को पानी की आवश्यकता एवं महत्व समझने और समझाने की ताकि ये जलाशय कभी प्रदूषित न हों तथा कभी सूखने की स्थिति में भी न आ सकें।

पानी गये न ऊबरे, मोती मानस चून

से.नि. प्रधानाचार्य, सिविल लाइन्स गढ़ी, बांसवाड़ा (राज.) ३२७०२२



गुलाब बत्रा

परीक्षण की कसौटी पर शिक्षा

आजादी से कुछ अरसे पहले जोधपुर में बाल निकेतन नामक शिक्षण संस्थान की स्थापना की गई। विद्यार्थियों के सहज, स्वाभाविक तथा सर्वांगीण विकास का लक्ष्य लेकर पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार कर शिक्षा क्षेत्र में नवीन परीक्षण का क्रम चला। संस्थान के बालघर तथा किशोरशाला में दाखिल बालक-बालिकाओं की जन्मजात प्राकृतिक शक्ति, क्षमता एवं रुचि को समझने और उनके समुचित विकास के लिए आवश्यक कार्यप्रणाली अपनायी गयी। बाल मनोविज्ञान की दृष्टि के साथ विविध शैक्षणिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया गया। आचार्य विनोबा भावे ने २३ अक्टूबर, १९४९ को बाल निकेतन देखकर कहा कि बुनियादी तालीम का प्रयोग करने वाली यह बच्चों की संस्था देखकर मुझे खुशी हुई।

लोकनायक बाबू जयप्रकाश नारायण ने १ नवम्बर १९५५ को बाल निकेतन का अवलोकन करते हुए कहा कि इस विद्यालय को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। ऐसा विद्यालय देश में दूसरा नहीं होगा। शिक्षाविद् श्री अनिल बोर्दिया ने १९६८ में कहा कि इस विद्यालय में बुनियादी शिक्षा, मॉन्टेस्सोरी पद्धति तथा गुरुकुल प्रणाली की कई अच्छी-अच्छी बातों का समावेश है। तत्कालीन शिक्षा आयुक्त श्री जगन्नाथ सिंह मेहता ने फरवरी १९७१ में कहा कि यह संस्था महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा पद्धति पर शिक्षा प्रदान कर रही है तथा छात्रों को श्रम के प्रति जागरूक कर रही है।

सामाजिक जागरूकता और सरकारी स्तर पर किए जाने वाले प्रयासों के फलस्वरूप पिछले दशकों में शिक्षा के प्रति जनचेतना के सुखद परिणाम दिखाई देने लगे हैं। विशेषकर महिला शिक्षा का विस्तार तेजी पर है।

शिक्षा के मामले में अपनी ही बात करूं। हमारे पिताजी केवल पांचवी कक्षा पास थे लेकिन उन्होंने हम भाई बहिनों की पढ़ाई पर विशेष ध्यान दिया। नतीजतन दो भाईयों ने पी.एच.डी. की उपाधि हासिल की। बहिनों ने स्नातक और बी.एड. तक अध्ययन किया। घर गृहस्थी में बड़े होने के कारण मैने शिक्षा के मामले में परीक्षण किया। इसीलिए इस आलेख का शीर्षक **'परीक्षण की कसौटी पर शिक्षा'** उचित लगा।

पत्रकारिता के क्षेत्र में जोधपुर के अपने कार्यकाल में विवाहोपरांत हमारी तीन संतान हुई। दो बेटी और एक बेटा। इनमें बेटा मध्य हुआ। अब पहली बिटिया की पढ़ाई का सवाल आया तो जोधपुर में मॉण्टेस्सोरी पद्धति पर आधारित बाल निकेतन में प्रवेश कराना उचित लगा। यह विद्यालय **गांधीवादी विचाराधारा** का पोषक था। वहां बालघर (नर्सरी) के कक्षा कक्षों का निर्माण इस तरह किया गया कि बालक-बालिकाओं को ऐसा नहीं लगे कि वे किसी कैद में बैठे हैं। बड़े बच्चों को बाल निकेतन के

उद्यान में त्रिभुज, वर्ग, आयताकार आकृति बनी क्यारियों की साफ-सफाई में जुटाकर गणित की शिक्षा दी जाती। संस्थान की उद्योग शाला में बगीचा, कताई-बुनाई, सिलाई, कशीदाकारी, मूर्तिकला, लकड़ी उद्योग सहित कई कार्य करवाये जाते रहे हैं।

सामाजिक प्रवृत्तियों के अन्तर्गत निकेतन का दैनिक कार्यक्रम सामूहिक सफाई एवं व्यवस्था से आरम्भ किया जाता है जिसमें विद्यार्थियों की भागीदारी होती है। प्राधानाचार्य स्वयं अंग्रेजी व्याकरण में बच्चों को निष्णात करने में प्रयत्नशील रहते थे। सामूहिक पिकनिक के आयोजन में बच्चों से धनराशि की अपेक्षा न करके उनके घर की स्थिति को ध्यान में रखकर सामूहिकता का व्यावहारिक पाठ पढ़ाया जाता।

बालघर में प्रवेश का तरीका अधिक मनोवैज्ञानिक था। एक कक्षा में पांच से दस बच्चों को बिठाकर एक शिक्षक द्वारा लकड़ी के गुटकों से परामिड बनाने का प्रदर्शन करवाया जाता। फिर बच्चों से इसका अनुसरण करने को कहा जाता। इस बीच कक्ष के चारों कोनों पर खड़े शिक्षक एक-एक बच्चे की गतिविधि का निरीक्षण करते हुए प्रवेश की प्रक्रिया के लिए अंक देते। हमारी बिटिया ने पिरामिड की अपेक्षा नयी आकृति बनायी तो उसका चयन तुरंत कर लिया गया। बालघर में सालभर तक बच्चों को क्रमश: बड़े से छोटे मोती में तार पिरोने का अभ्यास कराते हुए कलम पकड़ने की तैयारी करायी जाती थी। आठवीं कक्षा तक विद्यार्थी स्वावलम्बन एवं आत्मनिर्भरता के गुणों से समृद्ध हो यह प्रयास निरंतर रहता।

इसी क्रम में जब बेटे के विद्यालय प्रवेश का नम्बर आया तो बाल निकेतन ले जाना ही स्वाभाविक था। कच्ची नींद के कारण बेटा प्रवेश प्रक्रिया के मानक पूरे नहीं कर पाया। प्रवेश प्रभारी अध्यापिका परिचित थीं। उनका सुझाव था कि अगले वर्ष प्रवेश दिलाना। लेकिन तब तक बेटे की आयु सवा तीन साल हो जाती और बालघर में प्रवेश की आयु सीमा ढाई से तीन वर्ष थी। हमें कहा गया कि चूंकि बालक दुबला पतला है इसलिए कोई दिक्कत नहीं आनी चाहिए। अब हमारे सामने गंभीर धर्मसंकट था। बच्चे की शिक्षा की नींव झूठ के आधार पर खड़ी करना हमें गवारा नहीं था और हम साल भी खराब करने के पक्ष में नहीं थे। ऐसे में पढ़ाई के लिए परीक्षण की बात मन में आयी और उसी साल आदर्श विद्या मंदिर में प्रवेश दिला दिया।

मैं बाल निकेतन की शिक्षण व्यवस्था से परिचित था। गणित की परिक्षा में उसे ५० में से १७ नम्बर मिलने पर हिदायत मिली कि तीन माह में बालक ने प्रगति नहीं की तो प्रवेश रद्द कर दिया जाएगा।

जब सबसे छोटी बिटिया की पढ़ाई का नम्बर आया तो तीसरे तरीके के स्कूल में दाखिला दिया गया। यह **पब्लिक स्कूल** था जहां शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। इस विद्यालय में कक्षा तीन तक अध्ययन के बाद जयपुर में भी पब्लिक स्कूल में दाखिला लेकर तीनों बच्चों की शिक्षा संस्कार के संबंध में परीक्षण का क्रम चला। हम इन बच्चों तथा भाई के जीवन पर नजर डालते हैं तो अलग-अलग अनुभव सामने आया। **बाल निकेतन** में पढ़ी बिटिया आत्मविश्वास से लबरेज है और विवाहोपरांत विदेश में भी अपने परिचय क्षेत्र का विस्तार करते हुए प्रगति पथ पर अग्रसर है। बेटा **अनुशासन प्रियता** का गुण सीखा तो पब्लिक स्कूल में पढ़ी बेटी **अपनी बात बेबाक साफ-सपाट शब्दों में करने की अभ्यस्त** है। अभी भी जीवन की राह पर हर परिस्थिति के मोड़ पर इन संतानों के रवैये का परीक्षण होता रहा है। ❑

५/३१५, मालवीय नगर, जयपुर
मो. ९५३०३८३६३०

? एक सवाल है –
शिक्षा अनुशासन सिखावे
या नहीं ?

यह सवाल जे कृष्णमूर्ति ने भी किया था। आज हम भी करते हैं पाठक विचार करें। टिप्पणी लिख कर भेजें। ❑ सं.

मेरे सपनों का भारत



मैं ऐसे संविधान की रचना करवाने का प्रयत्न करूंगा, जो भारत को हर तरह की गुलामी और परावलम्बन से मुक्त कर दे और उसे, आवश्यकता हो तो, पाप करने तक का अधिकार दे। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि वह उनका देश है–जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्त्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊंचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध सम्प्रदायों में पूरा मेलजोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता के या शराब और दूसरी नशीली चीजों के अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें' स्त्रियों को वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को होंगे । चूंकि शेष सारी दुनिया के साथ हमारा सम्बन्ध शांति का होगा, यानी न तो हम किसी का शोषण करेंगे और न किसी के द्वारा अपना शोषण होने देंगे, इसलिए हमारी सेना छोटी से छोटी होगी। ऐसे सब हितों का, जिनका करोड़ों मूक लोगों के हितों से कोई विरोध नहीं है, पूरा सम्मान किया जाएगा, फिर वे हित देशी हों या विदेशी। अपने लिए तो मैं यह भी कह सकता हूं कि मैं देशी और विदेशी के फर्क से नफरत करता हूं। यह है मेरे सपनों का भारत। ... इससे भिन्न किसी चीज से मुझे संतोष नहीं होगा। ❑

– यंग इंडिया, १०–९–३१

हम्मीर का सद्‌भाव

अलाउद्दीन खिलजी के बागी सरदार दाऊद खां ने राणा हम्मीर के यहां शरण ली। बादशाह ने बागी को सबक सिखाने के लिए राणा से उसे वापस मांगा। राणा हम्मीर ने कहलाया, 'बादशाह सलामत, दाऊद खां, हमारी शरण में आये हुए हमारे सम्मानित अतिथि हैं। हम उन्हें आपको कैसे सौंप सकते हैं ?' अलाउद्दीन खिलजी आगबबूला हो गया उसने कहलाया, 'हमारा बागी, हमें सौप दिया जाय, वरना ईंट से ईंट बजा दी जायेगी।'

राणा का स्वाभिमान धमकियों की भाषा सुनने का अभ्यस्त कभी नहीं रहा। उसने बादशाह खिलजी को मुंहतोड़ उत्तर भिजवा दिया, 'हम भी रणभूमि में बादशाह के तलवार का पानी देखना चाहते हैं।' बस फिर क्या था, बादशाह अलाउद्दीन खिलजी की सेना राणा हम्मीर पर चढ़ दौड़ी। महानाश का भीषण ताण्डव नर्तन होने लगा। संख्या में राजपूत बहुत कम थे, फिर भी एक-एक राजपूत योद्धा दस-दस पर भारी पड़ रहा था।

दाऊद खां ने जब यह महानाश देखा तो वह राणा के सामने उपस्थित हुआ, 'महाराणा, मुझसे यह तबाही देखी नहीं जा रही है। मुझे इजाजत दें, मैं बादशाह के सामने आत्मसमर्पण कर दूं। कम-से-कम इतनी बड़ी तबाही तो थमे।' 'खां, साहब आप हमारी तौहीन कर रहे हैं। यह वीर का सम्मान नहीं अपमान है। शरणागत की रक्षा के लिए हनुमान जैसे भक्त ने भगवान राम को ललकार दिया था। शरणागत की रक्षा के लिए अर्जुन जैसे भक्त ने भगवान श्री कृष्ण को ललकार दिया था। शरणागत कबूतर की रक्षा के लिए राजा शिवि ने बाज के सामने अपना मांस काट कर तोल दिया था। इतनी शानदार विरासत से हम गद्दारी कैसे कर सकते हैं । हमारा निर्णय अटल होता है-

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यौहार,
पै दृढ़ हरिश्चन्द्र का टरै न सत्य विचार।
अथवा
रघुकुल रीति सदा चलि आयी
प्राण जाय, वरु वचन न जायी।

हमारे पास इतना गौरवमय उत्तराधिकार है, हम प्राण दे सकते हैं, वचन झुठला नहीं सकते।' 'महाराणा मैं एक मुसलमान हूं, मेरे लिये...' 'आप मुझे बहकाने की कोशिश न करें खां साहब, आप हिन्दू मुसलमान कुछ हों इससे हमें कोई मतलब नहीं, हम केवल इतना जानते हैं कि आप हमारे सम्मानित शरणागत बंधु हैं।' हम्मीर अपनी बात पर अटल बने रहे।

बादशाह अलाउद्दीन का क्रोध अपनी चरम सीमा पर था। राणा हम्मीर भी अपनी आन-बान-शान पर दृढ़ रहे। उनके पक्ष का एक-एक व्यक्ति नर-नारी-बच्चे तक बलि हो गये परन्तु उन्होंने शरणागत को शत्रु को सौंपा नहीं। ❑

अनौपचारिका के प्रकाशन का विवरण

फार्म-४

१.	पत्र का नाम	अनौपचारिका
२.	भाषा	हिन्दी
३.	अवधि	मासिक
४.	वार्षिक शुल्क	तीन सौ पचास रुपये
५.	प्रकाशक का नाम	रमेश थानवी
६.	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, ७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४
७.	प्रकाशन का स्थान	जयपुर
८.	मुद्रक का नाम	रमेश थानवी
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	उपर्युक्त
९.	मुद्रणालय का नाम	कुमार एंड कम्पनी
१०.	संपादक का नाम	रमेश थानवी
११.	क्या यह नया प्रकाशन है	नहीं

हस्ताक्षर
रमेश थानवी
(संपादक, प्रकाशक, मुद्रक)



प्रेमपाल शर्मा

पुस्तक मेले में–किताबें

इस बार पुस्तक मेले की विशेष सौगात लगी मुझे नन्हे मुन्ने बच्चों के लिए प्रकाशित बाल कहानियां। बेहद खूबसूरत प्रस्तुति। दस वर्ष तक के बच्चे इन्हें देखते ही वैसे दौड़ पड़ेंगे जैसे अपनी मां को देखकर। ऐसे चटकीले रंग और ऐसे सुंदर चित्र। कागज भी मोटा गत्ते वाला और पूरी ड्राइंग शीट पर। हाथी शेर सांप मोर चिड़िया जंगल, नदी सभी कुछ।

१. **मोर डूंगरी** किताब में कहानी और चित्र दोनों सुनीता के हैं। शब्द कम, चित्र ज्यादा। लेकिन गायब होते मोर, गौरैया के दुख का बयान भी उभरता है। और यह जरूरी भी है बच्चों और अगली पीढ़ी को बताने के लिए। कहां तो गांव में हर नीम, हर पेड़ पर मोर, मोरनी होते थे और कहां अब बिल्कुल गायब हो गए हैं और चित्रों में ही बचे हुए हैं।

२ व ३. इतनी ही खूबसूरत दो किताबें हैं ईरान के दो प्रसिद्ध लेखकों अहमद रजा अहमदी और नाहिद काज़मी की। **फिर मिलेंगे** और **वो नारंगी घर।** अलग–अलग देश समाज के शब्द, भाषा, लिपि भले ही अलग–अलग हों लेकिन संवेदनाएं, संस्कार, बालमन की उत्सुकता सभी की एक जैसी होती है। शब्दों से ज्यादा महत्वपूर्ण इन किताबों के चित्रांकन हैं और बच्चे उन्हीं के बीच अपने मन को चिड़िया के पंखों की तरह फैला देते हैं। बहुत सुंदर प्रस्तुति!

४. **एक बड़ा अच्छा दोस्त** किताब भी ईरान के प्रसिद्ध लेखक बाबक साबरी की है। ५० वर्षीय बाबक साबरी हड्डियों के सर्जन हैं और ईरान में रहते हैं। कहानी एक छोटी चिड़िया और हाथी की है। उनकी दोस्ती की उनकी आपस में बातचीत की। क्यों? क्यों नहीं बतिया सकते? जंगल में इतने सारे पशु पक्षी जानवर रहते हैं तो क्या वे नहीं बोलते आपस में। वे सब बोलते हैं और बाबक साबरी जैसे लेखक ही उसे सुन सकते हैं। आप भी सुन सकते हैं इन किताबों को पढ़ते–पढ़ते। पढ़ने में भी मजा आएगा और किताब को छूने में भी।

५. **शेर की नींद**–स्लोवेनिया के प्रसिद्ध लेखक मनिकजा मुसील की है और चित्रांकन भी उन्हीं का। अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद जानी–मानी लेखिका चित्रकार शशि सबलोक का है। जंगल के राजा शेर की अनोखी शिकायत है कि वह सोना चाहता है। लेकिन कभी चिड़िया की ची–ची उसे जगा देती है तो कभी चींटी उसके ऊपर होकर जाने लगती है। बंदर तो परेशान करता ही है। एक एक जानवर से जंगल का राजा परेशान है। लेकिन जब थक गया तो नींद आ गई। यानी नींद का संबंध थकान से होता है। कल्पना की अनोखी उड़ान! इन किताबों को अपने नन्हे मुन्ने बच्चों नाती–पोतों के लिए जरूर मंगवाएं! पीढ़ी दर पीढ़ी आप इन्हें अपने घर के कोने में संभाल कर रखना चाहेंगे। ❑

किताबें :

१. **मोर डूंगरी : लेखिका –सुनीता**
२. **शेर की नींद : लेखक –मुशील**
३. **एक बड़ा अच्छा दोस्त : लेखक –बाबक साबरी**
४. **वो नारंगी घर : लेखक –नाहिद काजमी**
५. **फिर मिलेंगे : लेखक –अहमद रजा अहमदी।**

(इन सभी पुस्तकों के प्रकाशक– जुगनू प्रकाशन, तक्षशिला एजुकेशनल सोसायटी, सी ४०४, बेसमेंट, डिफेंस कॉलोनी नई दिल्ली–२४ मो. : ९९७१३९९०४६



मंजूरानी सिंह

शांति निकेतन से...

'भारत में बाल शिक्षा के मनीषी' शीर्षक से लिखे गए 'अनौपचारिका' का जनवरी अंक सचमुच नए वर्ष का आभिनंदन करता-सा है, हमें नींद से जगाता, गायत्री छंद गाता, उद्गाता।

हमें हमारे सद-संस्कार का पुनर्स्मरण कराता यह अंक बहुत ऊर्जावान है। महात्मा गांधी की बैरिस्टरी की बच्चों के लिए संपादकीय में प्रेम गुप्ता की वकालत बड़ी जोरदार है उनकी अबाध हंसी की तरह।

महात्मा भगवानदीन और मोन्टेस्सोरी की शिक्षा नीति के तो हम आपकी प्रेरणा से बहुत पहले से ही मुरीद हैं। गिजु भाई की तो बात ही निराली है, मां-बापों की जो खबर वो लेते हैं काश वे सभी अभिभावकों तक पहुंच जाते। शिक्षा-शास्त्रियों ने बालकों की जिस आजादी और प्रेम की बात की है वे आज के स्कूलों में कैसे पहुंचाई जाए, सोचना है। विधि के बारे में मैं चिंतन कर रही हूं। इन्हें पढ़कर अभी मेरे सामने रवींद्रनाथ भी हैं, सभी प्रेम और क्षमा के पक्षधर हैं। यह गुण अपना संस्कार बन पाए इसके लिए बड़ी साधना की जरूरत है।

इब्ने इंशा की कविता और दिसंबर के अंक की पलटू साहब की कुंडलियां दोनों को मिलाकर देखने समझने का मन हुआ मेरा, दोनों ही चोट करते हैं और चेतना जगाते हैं। त्याग की महिमा सिखाते हैं।

कल मैं अज्ञेय जी की कविता असाध्य वीणा 'पढ़ाने के क्रम में विद्यार्थियों से बोली कि इसे समझने चलिए हम लोग पहले पेड़ से बातचीत करने का अनुभव लें। सब लोग पेड़ पर जा बैठे। चिड़िया चाहे पत्ता, तितली आदि कुछ भी बन कर पेड़ से संवाद करें और कुछ लिखें। चालीस मिनिट की कक्षा में सबने कुछ कुछ लिखा और मुझे हतप्रभ कर दिया। कितनी भावपूर्ण अभिव्यक्तियां थीं। दो कवितायें मुझे भेजी भी हैं। मैं भेजूंगी आपको।

मिलसजुलाकर बातें ये आती हैं कि ये शान्तिनिकेतन में मुझसे संभव हो पाया जहां वृक्ष के नीचे मैं कक्षा ले पा रही थी और मैं वर्षों से वृक्षों के साथ संवाद का आनंद जानती रही हूं, पर रवींद्र की अवधारणा के समकक्ष मैं भी मानती हूं कि यह संवेदना आते-आते ही आती है व्यक्ति में, सिखाने से नहीं, स्वतः स्फूर्त हो इसके लिए वातावरण देने की जिम्मेदारी शिक्षा से सम्बद्ध लोगों, संस्थाओं सबकी है। मेरा बेटा आनंदवर्धन जो शान्तिनिकेतन में ही पला बढ़ा है, पर घर के बागान में उसने एक भी पौधा-पेड़ नही लगाया, सब मेरे लगाए हैं, पर किसी कंस्ट्रक्शन के लिए जब एक पेड़ को काटने की बात ठेकेदार की तरफ से आयी तो उसने मुझे कहा 'मेरा गला पहले कटवाइए तब पेड़ को', मैं तो हैरान ही रह गयी। कंस्ट्रक्शन रोक दिया गया पर मुझे उसकी यह संवेदनशीलता अंदर तक शीतल कर गई, चैन दे गयी। आज उस बात को ४ -५वर्ष हो गए हैं। दो दिनों से माली नहीं आ रहा, सुबह देख रही हूं कि आनंदवर्धन बागान में सभी पेड़ पौधों को पानी पिला रहा है। बस बात इतनी सी है कि ऐसी कल्पना मुझे बहुत पहले हुआ करती थी पर सच आज हो रही थी,सोचती हूं जो प्राकृतिक है वह तो प्रकृति पर ही छोड़ना चाहिए, दोष तो मेरी सोच का था जो पहले ही चाह रही थी।

तो बातें बहुत हैं, इस विशेष अंक के लिए आप और आपकी पत्रिका के सभी सदस्य हमारी कृतज्ञता स्वीकारें। ❑

'उत्सव' सीमान्त पल्ली, हिन्दी भवन, विश्वभारती, शांति निकेतन, वीरभूम (प. बंगाल)-२५

बिछड़े सभी बारी-बारी

पिछले एक वर्ष से हम एक के बाद एक साथी खोते जा रहे हैं।

पहले एक वरिष्ठ साथी भाई दाऊदयाल जी गुप्ता चले गए। वे भरतपुर में रहते थे और भरतपुर की प्रौढ़ शिक्षण समिति के अध्यक्ष थे। भरतपुर की प्रौढ़ शिक्षण समिति बनाने में भाई गोपालप्रसाद मुद्गल का सक्रिय सहयोग था। वह भी उनसे पहले चले गए। दाऊदयाल जी गुप्ता कई शिक्षा कार्यक्रमों से जुड़ते रहे और वहां अपना सक्रिय एवं रचनात्मक सहयोग देते रहे। भाई दाऊदयाल जी संधान, लोक जुम्बिश, दूसरा दशक और प्रौढ़ शिक्षा की राज्य सदंर्भ केन्द्र से निरंतर जुड़े रहे।

भरतपुर शहर में ब्रजभाषा के एवं हिन्दी के समर्थ साहित्यकार होने के नाते उनका योगदान अप्रतिम रहा। भरतपुर प्रौढ़ शिक्षण समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के सहयोग से भरतपुर में राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया। वे बाल साहित्यकार भी थे और कई प्रशिक्षणों में सारगर्भित गीत गाते हुए समा बांध देते थे।

दाऊदयाल जी को गए अभी थोड़ा ही समय हुआ था कि तारावती जी के जाने का समाचार आ गया। तारावती जी का जाना हमारे लिए एक दुखद समाचार था। उन्होंने प्रौढ़ शिक्षण समिति के साथ और हम सब के साथ एक अद्भुत नेह का नाता जोड़ लिया था। वे राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में जिला प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में जिला प्रौढ़ शिक्षा अधिकार रहीं।

जब से तारावती जी प्रौढ़ शिक्षा के काम से जुड़ी थी तब से ही वह इस काम को मिशन समझकर इसमें उतर गईं थीं। गजब का उत्साह था उनमें। भरपूर जोश था। जनता से प्रेम था। औरतों के साथ नेह का नाता जोड़ सकने का हौसला था। तारावती जी का वही जीवट सबको याद आता रहेगा।

भाई भंवरसिंह जी चौधरी भीलवाड़ा प्रौढ़ शिक्षण समिति के सचिव और अध्यक्ष भी रहे एवं राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के सचिव भी रहे। उनके नेतृत्व में भीलवाड़ा में एक वार्षिक अधिवेशन भी हुआ। वे भी पिछले दिनों चले गये और अत्यन्त मधुर याद बस बाकी रह गयी।

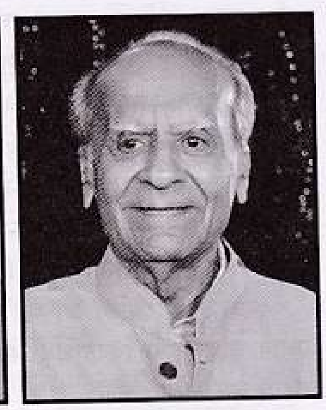
अभी हाल ही में अनौपचारिका के मुद्रक भाई कृष्णकुमार विधानी जी का भी आकस्मिक निधन हो गया। जनवरी का अंक हमने उनके सहर्ष सौजन्य से ही प्रकाशित किया था और फरवरी में वे चल दिये। उनका स्नेह हम कभी भूल नहीं पायेंगे।

याद बाकी रह गयी। हम यही गुनगुनाते रहेंगे। बिछड़े सभी बारी-बारी। ❑


श्री दाऊ दयाल गुप्ता


श्रीमती तारावती भादू


श्री भंवर सिंह चौधरी


श्री कृष्णकुमार विधानी



रमेश थानवी

क्या अब भी दिल्ली है दिल वालों की !!!

किसी जमाने में कहा जाता था कि दिल्ली तो दिल वालों की नगरी है। लोगों के मन में बरसों तक यह मुराद बनी रहती थी कि वे भी कभी दिल्ली जाएंगे। एक मुहावरा चला करता था कि दिल्ली अब दूर नहीं है। राजनैतिक पार्टियां गाहे-बगाहे जब कभी भी कोई रैली निकालनी हो, तब नारा उछाल देते थे **चलो! अब दिल्ली चलो!** मगर अभी पिछले दिनों जो कुछ दिल्ली में हुआ है, वह एक राष्ट्रीय शर्म है और हमारा माथा अब उस शर्म से झुक गया है। अब दिल्ली का नाम लेना भी अच्छा नहीं लगता। यह विश्वास भी नहीं होता कि दिल्ली में इतने अनपढ़ लोग, अशिक्षित लोग बसते हैं कि वे किसी के भी बरगलाने से अपने ही पड़ौसी का घर जला बैठें।

कहना चाहिए कि दिल्ली न तो दिल वालों की थी, न पढ़े-लिखे लोगों की एक नगरी। मुझे लगता है कि दिल्ली में जो कुछ हुआ है वह पूरे भारत के शिक्षा तंत्र की असफलता के कारण हुआ है। अब तक हुई शिक्षा और उससे निकले हुए तमाम लोग अगर इतने अशिक्षित सिद्ध होते हैं तो लगता है कि हमारी पूरी शिक्षा व्यवस्था अब तक एक पाखंड को जीती रही है। वहां क्या सिखाया जाता है और क्या पढ़ाया जाता है और फिर किस मुकाम पर भारत के भावी नागरिकों को पहुंचाया जाता है, इस सब का जवाब दिल्ली का ताजा बुलेटिन हमें दे देता है। मुझे अब दिल्ली का नाम लेते हुए शर्म आती है। ऐसा भी कहने को मन करता है कि अगर सवेरे उठकर दिल्ली का नाम लिया तो दिन भर रोटी नहीं मिलेगी। यह सब कुछ मैं जो कह रहा हूं वह दिल्ली की हृदय विदारक घटना के लिए पर्याप्त विलाप भी नहीं है।

क्या हुआ कि कहीं किसी ने अपना बेटा खोया, तो किसी ने अपना पति खोया, तो किसी ने अपनी मां खोयी, तो किसी ने अपनी पत्नी को खोया। यह भी क्या हुआ कि अपने ही पड़ौसी का घर जलाकर लोग तमाशा देखते रहे और अपने ही पड़ौसियों की दूकानें लूटकर लोग तीसमारखां बन गए। लूटी हुई पूंजी को लोग कहां ले जाएंगे? कहां रखेंगे वह पैसा? यह सब ऐसे सवाल हैं जिनका उत्तर कोई नहीं दे पाएगा। अगर कहीं उत्तर है तो वह केवल शिक्षा में है और शिक्षा ही उसे खुलासा करके बता सकेगी कि भूल कहां हुई?

जो कुछ हुआ है उसका रिहर्सल पहले कई जगह पर हो चुका है। दिल्ली से दूर भी और दिल्ली के भीतर भी। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में जो कुछ हुआ उसके दोषियों को अब तक नहीं पकड़ा जा सका है। वे जो भी रहे हैं, अब तक सुरक्षित हैं। हमारे शासन तंत्र की छतरी के नीचे। जब उनका कुछ नहीं बिगड़ा तो अब

दिल्ली के बाद किसका क्या बिगड़ेगा? मैं भी निरर्थक सवाल कर रहा हूं।

सवाल तो शिक्षा से है। शिक्षा की दुनिया में ही हमारे पास खुला आकाश है कि हम सवाल कर सकें। वहीं हमारे पास अवसर है कि हम समाज के सारे ताने-बाने की मरम्मत कर सकें या भावी ताने-बाने की रचना कर सकें। क्या होगा कल का समाज, कैसी होगी कल देश की अर्थव्यवस्था? किसे, कैसे और किन शर्तों पर कल इज्जत से रोटी मिल सकेगी? इसके बारे में शिक्षा अब भी बेखबर है। दरअसल शिक्षा ने अपने प्रभाव और परिणाम के बारे में खुद कभी सोचा ही नहीं। यह भी नहीं सोचा कि पाठ्य-वस्तु का आज के जीवन से सीधा क्या संबंध है? और कैसे वह आज के जीवन को तुरंत प्रभावित कर रही है। शिक्षा ने सोचा तो यह भी नहीं कि पढ़ाये जाने वाले तमाम विषयों और पाठों की अन्तरवस्तु को भारत के भावी नागरिक अपने जीवन में कैसे उतार रहे हैं? एक जमाना था तब कहा जाता था कि शिक्षा तीन सोपानों में संपन्न होती है। सबसे पहले सुनना; अर्थात् अच्छे श्रोता बनना। कान खुले रखना और जो कुछ सुन रहे हैं, उसमें अवगाहन करना।

दूसरा सोपान है मनन करना; जो कुछ सुना है और जाना है उस पर मनन करना। उसके बारे में सवाल करना और छानबीन करना कि जो कुछ सुना वह आज के जीवन के संबंध में कितना प्रासंगिक है? कुतर्क को यहां स्थान नहीं है, मगर तर्क को स्थान जरूर है। विद्यार्थी के साथ रचनात्मक संवाद हो और वह सदा विनम्रता के साथ प्रश्न करते हुए छोटी-से-छोटी बात को न केवल समझ सके बल्कि अपने जीवन में उतार सके, तभी शिक्षा संपन्न होती है और सफल होती है।

तीसरा सोपान जीवन में उतारने का ही है। हमने जो सीखा वह जीवन में उतर जाए। हम उसमें अवगाहन करने लगें और अपने शरीर एवं अपनी अस्मिता का हिस्सा बना लें, तभी शिक्षा हुई है यह माना जाना चाहिए। तब फिर हमें यह मान लेना चाहिए कि दिल्ली में जो रह रहे थे अब तक उनकी शिक्षा नहीं हुई थी। वे सारे के सारे लोग अनपढ़ थे। इसीलिए इतनी आसानी से समाज विरोधी तत्वों द्वारा बहका लिए गए। जो समाज विरोधी तत्व होते हैं वे भी खासे अशिक्षित होते हैं और उनको समाज से दूर रखने के लिए हमारा शासन तंत्र जो व्यवस्था करता है वह व्यवस्था भी सारी की सारी अशिक्षित लोगों द्वारा संचालित होती है। तकनीक की सुलभता के कारण अब हमारे हाथों में दिल्ली में जो कुछ घटा उसकी छवियां भी सुरक्षित हैं । इसलिए अब हमें किसी सबूत की जरूरत नहीं है कि दिल्ली के दंगों में वे कौन लोग थे जो दंगों से लोगों को बचा रहे थे अथवा दंगों को बढ़ाने में योगदान दे रहे थे। दिल्ली पुलिस के अधिसंख्य जवान आग में घी डालने वाले थे। दंगों को भड़काने वाले थे। इसकी तस्वीरें हजारों लोगों के हाथों में सुरक्षित हैं।

दूसरी बोलती हुई तस्वीरें वे भी सुरक्षित हैं जो प्रमाण प्रस्तुत करती हैं कि तथाकथित राजनेता अथवा छुटभैये नेता लोग दंगों को भड़काने अथवा उनको प्रश्रय देने के लिए तैयार थे। ऐसी स्थिति में हमारे सामने दो सवाल पैदा होते हैं। पहला यह कि हमारे शासन तंत्र की शिक्षा कौन करे? और दूसरा यह कि हमारे राजनेताओं की शिक्षा कौन करे? अगर दोनों की शिक्षा हो जाये तो समाज में स्वाभाविक अमन-चैन पैदा होगा और हम संपूर्ण भाईचारे के साथ पूरे प्रेम से रह सकेंगे। तो समाज में शांति तभी कायम होगी जब हमारा शासन तंत्र और राजनेता सभी शिक्षित हो सकेंगे।

सवाल हमारा अब भी यह है कि ऐसी सही शिक्षा संपन्न कैसे हो सकेगी? डर यह भी लग रहा है कि जो अनपढ़ लोग दिल्ली में बसे हुए थे, वैसे ही क्या सभी शहरों में बसे हुए हैं? अगर यह भी सच है तो कहीं यह भी सच न हो जाए कि दिल्ली की पुनरावृत्ति किसी और शहर में भी हो जाए। यह एक दिल दहलाने वाली दुःशंका है। मालुम नहीं कब क्या होगा, मगर आशा केवल इस विश्वास पर टिकी है कि हम भारत के लोग अंततोगत्वा अमन चाहते हैं और अहिंसक समाज की रचना करते हुए भाईचारे के साथ जीना चाहते हैं। ❑

अनौपचारिका

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर द्वारा प्रकाशित
समकालीन शिक्षा–चिंतन की पत्रिका

विशेषताएं

- अनौपचारिका अपने बालकों की शिक्षा में रुचि रखने वाले हर परिवार की पत्रिका है।
- अनौपचारिका हर परिवार में शिक्षा की सही समझ बनाने वाली पत्रिका है।
- अनौपचारिका हर शिक्षक की अपनी पत्रिका है।
- अनौपचारिका हर विद्यालय महाविद्यालय की आवश्यकता है।
- अनौपचारिका साक्षरता, सतत शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा एवं विकास का काम करने वाली हर संस्था एवं प्रत्येक कार्यकर्ता की अपनी पत्रिका है।
- अनौपचारिका समकालीन शिक्षा चिंतन एवं शिक्षा के शास्त्रीय विवेचन को रोचक तरीके से पाठकों तक पहुंचाने का एक सुचिंतित प्रयास है।
- अनौपचारिका समाज परिवर्तन के काम में जी जान से जुटे नौजवानों को शक्ति, स्फूर्ति एवं सही नजरिया देने वाली पत्रिका है।
- अनूठी व अनुपलब्ध सामग्री के साथ हर माह प्रकाशित होती है अनौपचारिका।

सहयोग राशि ऑन लाईन स्थानांतरण के लिए बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH (Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

सम्पर्क
संपादक, अनौपचारिका, राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति 7–ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर–302004
फोन नं.–91–141–2700559,2706709,2707677 ई–मेल–raeajaipur@gmail.com

अनौपचारिका

अनौपचारिका सदस्यता सहयोग राशि वार्षिक–350/– रु. संस्थागत वार्षिक सहयोग राशि–500/– रु. मैत्री समुदाय सहयोग राशि –3000/– रु. नकद, बैंक ड्राफ्ट, चैक जमा करा रहा हूं/रही हूं।

नाम : .... पता : ....
फोन : ....
ईमेल : ....
पिन कोड : ....

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा ७-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-३०२००४ से प्रकाशित। संपादक - रमेश थानवी

अनौपचारिका : पृष्ठ–३२ मार्च–अप्रेल, २०२० (संयु.) रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नई दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No. 2581-981X

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवसपर



साथ–साथ हैं,
एक सभी हैं
हमें चाहिए मान।
हम हैं
भारत की संतान।